चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

भारतीय इतिहास में मौर्य साम्रज्य को अति विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसकी स्थापना के साथ ही हम इतिहास की सुदृढ़ धरा पर अवतरित होते है। (नंदो द्वारा स्थापित) नवीन मगध साम्राज्य को मुख्यतयः दो प्रकार का खतरा था। प्रथम नंदो के अत्याचारी शासन के प्रति जनता में व्यापक रूप से असंतोष व्याप्त था। दूसरी ओर पश्चिमोत्तर सीमा पर विदेशी आक्रमण कारियों का खतरा था। यद्यपि सिकन्दर को व्यास नदी के तट से लौटना पड़ा था, तथापि उसके उत्तराधिकारियों के मन में, असकी वह महत्वकांक्षा उसकी वे विस्तारवादी योजनाएं भी चल रही थी। शीघ्र ही पश्चिमी एशिया में एक नये नेता के अधीन यूनानी सेनाओं के गठन में बहुत देन नहीं लगी और इस प्रकार भरतीयों के सामने एक बार फिर उस प्रचंड विदेशी क्षंइनावाद को झेलने की तैयारी करने की आवश्यकता आ पड़ी। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के वीसरे दशक में भारत की रानीति में अग्रमीज, आम्भि, पोसर आदि जिन बहुत से राजाओं का बोल बाला था, वे इस देश की समस्याओं के प्रति किसी भी प्रकार की जागरूकता का परिचय नहीं दे रहे थे।

इस प्रकार नवोदित मगध साम्राज्य को कायम रखने और उसकी भी समृद्धि की वृद्धि करने विदेशी खतरे का सामना करने अस्त व्यस्त भारत के असंख्य टुकड़ो को एक रानीतिक सूत्र में आवद्ध करने और इस प्रकार चक्रवर्ती के आदर्श की व्यवहारिक राजनीति में एक वास्तविकता के रूप प्रतिविदत करने भारतीयों को विभिन्न कार्य क्षेत्रों में एक महान प्रयत्न के लिए उत्साह से अनुप्राणित करने, एक द्रवुद् प्रशासन की स्थापना करने और उस को राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टियो से बाहरी सम्पर्क में लाने आदि के लिए एक परम पुयषार्थी और पराक्रमी व्यक्ति की आवश्यकता थी सौभाग्य से इस देश को एक ऐसा ही व्यक्ति प्रापत हो गया, जिसे भारतीय इतिहास में चन्द्रगुपत मौर्य के नाम से जाना जाता है। जिसे क्लासिक लेखकों ने 'सांड्रोकोप्टस' तथा 'एंड्रकोप्टस' कहा है।

दुर्भाग्य वश हमें इस मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य की जाति तथा प्रारम्भिक जीवन के विषय में कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। लेकिन इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मौर्य क्षत्रिय थे और इनका सम्पर्क मोरियों से था।

चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जन्म के बाद अनेकानेक उतार–चढ़ाव तथा उत्थान पतन का सामना करते हुए अंततः एक ऐसे पारखी के हाथ जा पहुंचा, जो चन्द्र की असाधारण योग्यता, पराक्रम, दृढ़निश्चयता, बुद्धिमत्ता आदि की परख करने में विलम्ब न कर सका और उसने शीघ्र ही 1000 कार्षाषण देकर इस महान विभूति को खरीद

लिया। जिसे कौटिल्य, याणक्य तथा विष्णुगुप्त आदि अनेक नामो से जाना जाता है। इसे एक बार नंदराज घनानंद ने अपमानित करके अपने राजदरबार से निष्काषित किर दिया था। उसी समय यह विद्वान ब्राह्मण नंदो वे मूलोच्छेन की प्रतिाा की थी। इस प्रकार चाण्क्य को भी अपनी प्रतिज्ञा को निभाने के लिए एक ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी। चाणक्य, चन्द्रगुप्त को अपने साथ वक्षशीला लाया, जहां उसकी शिक्षा दिक्षा का उचित प्रबंध किया गया।

इन दोनो के योग ने न केवल उनके जीवन को वरनृ भारतीय इतिहास को एक नवीन दिशा प्रदान की। इनके सम्मिलित प्रयत्नो ने विदेशियों द्वारा आकाल पश्चिम भारत की पुण्य भूमि को स्वतंत्र किया, पुनः नंद वंश का विनाश करके मगध को मुक्त किया। इस प्रकार चाणक्य अपनी प्रतिाा को पूर्ण करने में तथा चन्द्रगुप्त मौर्य चक्रवर्ती आदर्श को चरितार्थ करने में सफल हुआ। इतिहासकारों का मत है कि तक्षशिला में ही अपने प्रशिक्षण काल के दौरान ही चन्द्रगुप्त , सिकन्दर से मिले गया था। अतः यह उसके सैलिक प्रशिक्षण का ही एक अंग था। इसके विषय में प्लूथर्क तथा जस्टिन ने बड़ा ही रोचक विचरण दिया है। जस्टिन के अनुसार सिकन्दर चन्द्रगुप्त की स्परूट वादिता तथा निर्भीकत से बड़ा स्पष्ट दृष्ण तथा उसने मार डालने का आदेश दिया किन्तु शीघ्रता से भागकर उसने अपनी जान बचायी।

अब प्रश्न यह उठता है कि– चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम भारत को विदेशी सत्ता से मुक्त कराया कि नंदो का मुलोच्छन किया। यह प्रश्न काफी विवादस्पद रहा है। इसका कारण यह कि "यूनानियों ने एक मात्र पंजाब विजय का उल्लेख किया है और भारतीय ग्रंथो ने एक मात्र मगध विजय का।"

डा0 स्मिथ तथा हेमचन्द्रराय चौधरी का मत है कि उसने पहने मगध को जीता।

लेकिन इस मत को स्वीकार करने में अनेको कठिनाईयां है क्योंकि महावंश टीका और परिशिषट पर्वन के उद्धरणो से ज्ञात होता है कि उसने सर्वप्रथम सीमावर्ती प्रदेशो को अधीन किया, तत्पश्चात धीरे–धीरे पाटलिपुख तक बढ़ आया और नंदो का विनाश कर राज्य को हस्तगत कर लिया।

'युनानी रोमन'– या 'ग्रीक रोमन' लेखकों के विवरण तथा बौद्ध साक्ष्यों से जो विवरण मिलता है। उसके आधार पर यह निष्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि चन्द्रगुत ने सर्वप्रथम पंजाब तथा सिंघ को ही विदेशियों की दासता से मुक्त किया था।

जस्टिन के समस्त उद्धरणें से जिसमें 'डाकुओं के झुंड' को एकत्रित करने, 'सिंह द्वारा चन्द्र को सूंघ कर हार जाने तथा जंगली हाथी का चन्द्र को अपनी पीठ पर बिठाया जाना आदि से यह सिद्ध होता है कि– "वह पंजाब के ऊपर आक्रमण एवं अधिकार करने के पूर्व मगध का राजा न था, अन्यथा वह मगध की विशाल सेना के साथ पश्चिमी भारत पर आक्रमण करता।"

1. विदेशी शासन से देश को मुक्ति– यह चन्द्रगुपत का सौभाग्य था कि तत्समय पंजाब तथा सिंघ की रानीतिक परिस्थितियां पूर्णतयः उसके अनुकूल थी। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात ही उसके सेनापतियों में साम्राज्य विभाजन के लिए गृहयुद्ध छिउ़ चुका था। इधर सिकन्दर द्वारा अधिकृत भारतीय प्रदेशों में विद्रोह और स्वतंत्रा संग्राम की लहर उठ पड़ी थी। अनेक यूनानी क्षत्रीयों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इन सबके अग्रदूत शायद चन्द्र और कोटिल्य ही रहे होंगे।

ऐसी परिस्थिति में चन्द्रगुप्त तथा कौटिल्य ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए विदेशी शासन के प्रति भारतीय जनमानस को भड़का कर और उनका मत प्राप्त करने के बाद, हमावंश टीका के अनुसार– विन्ध्याचन के वनों में कौटिल्य ने 80 करोड़ कार्वायण एकत्रित किये। इसकी सहायता से उसने एक विशाल सेना का निर्माण किया। अर्थशास्त्र जस्टिन आदि के अनुसार उसकी सेना में निम्ल वर्ग के लोग सम्मिलित थे।

(क) चोर अथवा प्रतिरोधक
(ख) म्लेच्छ
(ग) चोरगण
(घ) आरविक
(ड) शस्त्रोव जीवों अथवा आयुघ जीवी

–ये सब जातियां उनको आसानी से पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त हो गयी।

'मुद्राराक्षस' तथा 'परिशिषट पर्वन' से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को पर्वतक नामक एक हिमालय क्षेत्र के शासक की सहायता प्राप्ह हुई थी। कुछ विद्वानों ने इस शासक की पहचान राजा पोरस से की है। लेकिन इस मत के पीछे कोई ठोस आधार नहीं है।

325 B.C. के लगभग सिन्धु घाटी के प्रमुख यूनानी क्षत्रिय फिलिप द्रितीय की हत्या कर दी गयी और 325 B.C. में सिकन्दर की हत्या कर दी गयी। इस अवधि में बीच में चन्द्रगुप्त ने एक विशान सेना का निर्माण कर चुका था। तत्पश्चात सिकन्दर के भारतीय प्रदेशों के क्षत्रयो के विरूद्ध राष्ट्रीय सुद्ध छेड़ दिया। अंतः 317 B.C. में पश्चिमी पंजाब को अंतिम सेनानायक 'यूछमस' को भारत छोड़ने के लिए बाह्य किया। इस प्रकार 317 B.C. तक सम्पूर्ण सिंघ तथा पंजाब को चन्द्रगुप्त ने अधिकृत कर लिया।

इस प्रकार एक लम्बे अंतराल से चले आ रहे विदेशी शासन से पश्चिम भारत की पूण्य भूमि मुक्त हो सकी। दुर्भाग्य वश क्लासिकल लेखकों ने इस युद्ध की निश्चित तिथि तथा विवरण के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है।

एरियन का कथन है कि–"युद्ध तब तक चलता रहा, जब तक कि उनमें परस्पर मेल और विवाह सम्बंध स्थापित नहीं हो गया।"

संधि की निम्न शर्ते ठहरायी गयी।

(क) सेन्यूकस ने चन्द्रगुप्त को आरको शियां (मुधार), पेरोयनिसडाई (काबुल), एरिया (हेरात) एवं जेड्रोंसिया के कुछ भाग दिये।

(ख) प्लूटार्क के अनुसार "चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार में दिये।"

(ग) एरियन के अनुसार दोनों ने वैवाहिक सम्बंध स्थापित किया।

(घ) सेल्यूकस ने अपने मेगस्थनीज नामक दूत को चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा।

–लगता है कि सेल्यूकस ने ही चारों प्रदेश अपनी पुत्री के दहेज स्वरूप दिया था– जैसा कि कोसला देवी को काशी का प्रदेश आंचन में मिला था और कैथरीन को बम्बई का।

निश्चय ही चन्द्रगुप्त की यह महान सफलता थी और अब उसके साम्राज्य की सीमा पारसीक साम्राज्य की सीमा को स्पर्श करने लगी और इसी समय से भारत तथा यूनान के बीच राजनितिक सम्बंध स्थापित हुआ। जो बिन्दुसार तथा अशोक के समय में भी बना रहा।

4. पश्चिमी भारत की विजय– शक क्षतक रूद्रदामन के गिसार अभिलेख (150 ।क) से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने श्चिमी ाारत में सुराष्ट्र तक्का प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन में कर लिया था और पुष्पगुपत वैश्य नामक को इस प्रांत का गवर्नर नियुक्त किया था, पिसने सुदर्शन झील का निर्माण किया था। यहीं सोवांरा भव स्थान से अशोक का अभिलेख भी मिला है।

5. दक्षिणी भारत– चन्द्रगुपत की दक्षिणी विजय के सम्बंध में जानकारी हमें अशोक के अभिलेखों तथा जैन सएवं तमिल स्त्रोंतो से मिलती है। दक्षिणी भारत में अशोक के अभिलेख सिद्धपुर ब्रह्मगिरी, जटिगरामेश्वर, मास्की तथा गुटी आदि प्रदेशो से मिले है।

अशोक स्वंय अपने अभिनेखों में अपने राज्य की दक्षिणी सीमा पर स्थित चोल, पाण्डय, सती पुत्र तथा केरलपुत्र जातियों का उल्लेख करता है। जैसे कि अशोक के तेरहतें शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने एक मात्र कलिंग विजय किया था। ऐसी स्थिति में लिश्चित पूर्व कहा जा सकता है कि ये प्रदेश चन्द्रगुप्त ने ही ीत कर अपने प्रदेश में सम्मिलित किया होगा– क्योंकि बिन्दुसार की भी किसी विजय का विवरण नहीं मिलता है।

जैन ग्रंथ भद्रवाहुचरित के अनुसार चन्द्रगुपत अपनी वृद्धा में जैन साधु भद्रवाहु की शिष्यता ग्रहण की थी और दोनों कर्नाटक राज्य के श्रवणवेल गोला नामक स्थान पर आकर बस गये थे और वही चन्द्रगुप्त अपने प्राण त्यागे थे। इससे कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त उसी स्थान पर तपस्या के लिए गया होगा जो उसके राज्य में सम्मिलित रहा हो।

तमिल परम्परा से ज्ञात होता है कि मौर्यो ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण क्षेत्र में 'मोरह' के राजा पर आक्रमण किया था।

इस प्रकार 'उपर्युक्त' विवरणों से ज्ञात होता है कि दक्षिणी भारत की विजय भी चन्द्रगुपत ने ही की थी।

साम्राज्य विस्तार– प्लूटार्क का कथन है कि चन्द्रगुप्त ने 6 लाख सैनिकों की सहायता से सम्पूर्ण भात पर आक्रमण और अधिकार कर लिया।

महावश टीका चन्द्र को सकल जम्बू दीप का शासक मानती हे।

मुद्राराक्षस के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि "चन्द्रगुप्त का सामान्य चल समुंद्र पर्यन्त था।" इन उद्धरणों की वास्तविकता चाहे जो भी हो लेकिन इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि "चन्द्रगुप्त का विशाल साम्राज्य" इत्तर पश्चिम में इसकी सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था तथा पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र तथा सोदारा तक विस्तृत था।

राजतरंगिणी से ज्ञात होता है। कि काश्मीर वर अशोक का अधिपत्य– जिससे यह ज्ञात होता है कि काश्मीर चन्द्रगुप्त के राज्य में सम्मिलित रहा होगा।

यद्यपि चन्द्रगुप्त की राजनैतिक व सैनिक सफलताये काफी उदात्त है तथापि इनसे उसकी उपलब्धियों तथा सफलताओं की इतिश्री नहीं हो जाती है। वह युद्ध में सफूर्तिमान था शांति की कला में भी उतना ही कर्मठ था।

उसने एक प्रपुद्र प्रशासन की स्थापना की, वैदेशिक सम्बंध स्थापित किया कला तथा साहित्य आदि के विकास का समुचित अवसर प्रदान किया।

नागरिक प्रशासन के क्षेत्र में चन्द्रगुप्त ने जिस योग्यता का परिचय दिया उससे स्पष्ट हो जात है सामान्य योद्धाओं मे वह काफी श्रेष्ठ था। उसने जनता की सुख समृद्धि और सभ्यता की उन्नति के अनेक उपाय किये। उसने अर्चन अधीन मुर्तियों का चुनाव योग्यता और चरित्र के आधार पर किया। न्याय व्यवस्था समता के आधार पर प्रतिष्ठित किया। कैसि इतिहासकारों ने विवरणो से ज्ञात होता है कि उसने दश में कड़े अनुशासन की स्थापना की थी। उसके समय का दंड विधान अति कठोर था, जिसमें अंगभंग शामिल था।

उसका दवबार विदेशी राजनयिकां तथा दूता व विद्वानो से हमेशा भरा रहता था। उसने विदेशियों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनकी सुख–सुविधा के लिए एक अलग से विभाग स्थापित कराया था।

कैटिन इतिहासकारों ने पाटलिपुत्र नगर की अति मनोरम वर्णन किया है। 'उनके अनुसार' पाटलिपुत्र एक विशान और समृद्ध नगर था, जो गंगा और सोन के संयम पर बसा था। इसका आकार समानांन्तर चतुर्भुज का था। पाटलिपुत्र के राप्रसारद का तो बड़ा ही अविश्योकात्मक वर्णन मिलता है।

एलियन लिखता है। कि 'राजाधिराज एक ऐसे महल में रहता था, जिसका निर्माण कारीगरी से ही अचम्भा था और सुन्दरता में यह एकबतना तथा सूसा के महलों से भी श्रेष्ठ था।

'मेगस्थनीज लिखता है कि वह हमेश प्रजा के कल्याणार्थ व्यस्त रहता थां प्रजा प्रत्येक समय उसका दर्शन कर सकती थी यहां तककि जब वह मालिश करा रहा हो तब भी।'

चन्द्रगुप्त एक कुशल योद्धा तथा महान विजेता ही नहीं थां, वरन् एक योग्य शासक भी थां उसने अपने प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से एक ऐसी शासन व्यवस्था को अपनाया जिसे परवर्ती भारतीय शासकों ने भी पूर्वत अपनाया। संक्षेप में इस शासन की निम्न विशेष्ताये थी।

सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण, विकसित अधिकारी, तंत्र, उचित न्याय व्यवस्था, नगर शासन, कृषि, शिल्प उधोग, संचार वाणिज्य एवं व्यापार की वृद्धि के लिए राज्य द्वारा अनेक कारगर उपाय करना।

इसका शासन 'प्रजा सुखे सुख राज्ञ' वाली उक्ति अंक्षरशः चरितार्थ करता था।

———————————————————————

2

गुप्त वंश

1. चन्द्रगुपत द्रितीय विक्रमादित्य की राजनितिक वैवाहिक तथा सांसकृतिक उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

"महाराजा धिराज श्री समुंद्रगुप्तस्य प्रत्रेण महादेव्यां द्रत्तादेव्यामुत्पन्नेन अर्थात– "महदेवी दत्तादेवी" के गभ्र से उत्पन्न समुन्द्र गुप्त का यह पुत्र असाधरण प्रतिभा अदम्य उपसाह तथा विलक्षण पौरूष से युक्त था। उसका राज्यकाल गुप्तवंशीय इतिहास के स्वर्णिम का परिच्छेद का प्रतिनिधित्व करता है। जहां वह शक, कुषाण, वात्हीक आदि का विजेता था वही धर्मनिष्ठ तथा कला संरक्षण एवं साहित्यानुराग आदि सद्गुणों से भी विभूषित था। इस प्रकार उसमें राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धि के कारण वह कालानतर के साम्राटों के लिए आदर्श सिद्ध हुआ 'क्लासिकल युग' से विहित किया गया है।

मथुरा स्तम्भ लेख जिसकी तिथि गुपतसंवत 61 अर्थात 380 AD है, के एक लेख 'राज्य संवत्सर पंचमें के आधार पर विद्वानों ने उसके राज्यारोहण की तिथि 308–5=375 AD माना है। उसके शासन की अंतिम तिथि (सांची अभिलेख की तिथि 93 गुप्त संवत–अपना) 412 AD के आधर पर 412 AD मानी जाती है।

अभिलेखों तथा मुद्राओं में उसके अनेकों नाम तथा उपाधियाँ मिलती है। सांची अभिलेख में उसे 'देवराज' वाकाटक लेखो मे–देवगुपत तथा मुद्राओं पर देवी भी कहा गया है।

नरेन्द्रचंद्र, सिंहचंद्र, सिंह विक्रम, विक्रमांड्क, विक्रमादित्य, परमभगवत आदि उपाधियां जहां एक ओर उसके अतुल पराक्रम तथा अदरम्य साहस का प्रतिनिधित्व करती हे। वही दूसरी ओर धर्मनिष्ठ वैष्णव होना भी सिद्ध होता है।

चन्द्रगुप्त द्रितीय का राज्यरोहण अत्यंत क्षुब्ध परिस्थितियों में हुआ था जैसा कि अनेकों साक्ष्यों को प्रतीत सिद्ध हे चुका है कि उसने अपने अग्रेज रामगुप्त को मारकर तथा उसकी पत्नी से विवाह कर सिंहासना रूढ़ हुआ था। अत एवं इन घटनाओ की प्रतिकक्रया अवश्य हुई होगी। जैसा कि जैन मता वलम्बी काफी समय तक चन्द्रगुप्त द्रितीय को राज्य का अपहारक अंग्रेज का हत्यारा एवं दुराचारी मानते थे। इस प्रकार उसके समक्ष तत्समय दो मुख्य समस्यायें थी (1) पहला अपने उत्तराधिकार को वैधानिक स्वरूप प्रदान करना। (2) दूसरा विदेशी शामीयो से तस्त्र पश्चिमोत्तर भारत को मुक्त करना था। जिसके लिए उसने अपनी स्थिति को सृदृढ़ करने के लिए वैवाहिक सम्बंधो का सहारा लिया। प्रथम समस्या के समाधान के लिए उसने उपने को तेत्यादपरिगृहीत अर्थात पिता द्वारा मनोनीत घोषित किया। जैसाकि उसके उत्तराधिकरियो ने उसे सर्वदा अपने अभिलेखों में 'त्पादपारितहेत' के रूप में उल्लिखित किया है। इससे लगता है कि इस कार्य में उसे सफलता अवश्य मिली होगी। उसकी तीसरी समस्या साम्राज्य के

भीतर शक्ति तथा शांति की स्थापना करना तथा सीमा प्रांतो को पूर्णरूप से अपने वश में कराया था।

(क) वैवाहिक सम्बंध–

चन्द्रगुप्त द्रितीय तत्कालीन परिस्थितियों का सुक्ष्म नीरीक्षण करने के बाद सर्वप्रथम वैवाहिक सम्बंधो द्वारा था अपने पूर्वकालीन सम्राटो के पद चिन्हो का अनुसरण करते हुए अपनी राजनैतिक स्थिति को सुदृढ़ता तथा वैधानिकता प्रदान किया तत्पश्चात अपनी विजय की दुन्दुभि बजायी।

H.C. चौधरी के अनुसार "जिस वरह हर्थक वंशी नरेश दिम्बिसार तथा मुप्तवंशी नरेश चन्द्रगुपत प्रथम ने भी वैवाहिक सम्पर्क स्थापित कर स्थिति को सुदृढ़ किया था उसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्रितीय ने भी अपनी समकालीन शक्तियों से वैवाहिक सम्बंध स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत किया।"

R.C. मजूमदार का मत है कि "शक्तिशाली राज परिवारों से वैवाहिक सम्बंध गुप्तों की साम्राज्य वादी नीति का एक अंग था। जिसका चन्द्रगुप्त द्रितीय ने भी अक्षरथ पालन किया।"

गुपतकालीन अभिलेखों साहित्य मुद्राओं तथा विदेशियों के यात्रा विवरण से चन्द्रगुप्त की निम्न उपलब्धियां परिलक्षित होती है। वैवाहिक सम्बंध स्थापित करना। विदेशियों शाक्तियों का उन्मूलन, अश्वमघ यज्ञ, धार्मिक सहिष्णूता, कुशल प्रशासन, विधप्रेम, कला तथा साहित्य का उचित संरक्षण के कारण समुचित विकास। यही वे तत्व थे जिन्होंने गुप्त साम्राज्य को स्वर्गयुग तथा 'क्लासिकल युग' का दावेदार बना दिया।

(1) नागवंश – नागवंश का रानीतिक इतिहास गुप्तों से श्री प्राचीन है। प्रयागप्रशस्ति में इन राजाओं का उल्लेख मिलता है। यद्यपि समुंद्र गुप्त कई नाग राजाओं को जीता था तथापि उनकी रानीतिक स्थिति भी काफी मजबूत थी। उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए उसने नाग राजकूमारी कुवेनागा से अपना विवाह किया।

डा0 R.C. मजूमदार का मत है इस सम्बंध द्वारा गुप्त नरेश को अपनी नवस्थापित सार्वभैव सत्ता को सृदृढ़ करने में सहायता अवश्य उपलब्ध हुई।

यू0 एन0 राय का विचार है कि यह वैवाहिक सम्बंध समुन्द्रगुप्त के काल मे ही स्थापित हुआ होगा तथा प्रभावित गुत का जन्म उसी समय हुआ होगा।

(2) वाकाटक वंश – वाकाटक लोग दक्षिण पथ के शासक थे। उनकी गणना भारत वर्ष की प्रतिष्ठित तथा महती शक्तियों में की जाती है। बहुत सम्भव है कि उसी कारण समुन्द्रगुपत अपने अक्षिण पथ अभियान के समय वाकाटको से इलझना उचितन समझा है। चन्द्रगुप्त अको उस स्थिति को समझते हुआ तथा अकत सहयोग सो ज्ञात होता है कि "अपनी प्राप्त यौवना किया प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्रितीय से किया। जो कि उसकी शक विजय योजना में सिद्ध हुआ।

डा0 B.A. स्मिथ ने लिखा हे कि "वाकाटक महाराज एक ऐसी भोगोलिक स्थिति में था कि वह उत्तरी भारत के शको के गुजरात तथा सौराष्ट्र के राज्य पर आक्रमण करने वाले किसी भी" बहुत बड़ा लाभ या हानी पहं सकता था।

विवाह के कुद समय बाद रूद्धसेन द्रितीय कि मुत्यु होगयी, परिणामस्वरूप प्रभाती गुपता अपने अन्य रूवस्क पुत्रों दिवाकर सेन तथा दामोदर सेल की संरपिक से रूप में अपने पिता के पूर्व सरंक्षत्व में में लगभग 20 साल तक शासन किया। लिश्चय ही इस समय वाशिष्ठ राज्य चन्द्रगुप्त के पूर्ण प्रभाव में आ गया होगा।

R.C. मजूमदार का विचार है कि–

"विधवा रानी ने अपने पिता को हर सम्भव सहायता प्रदान किया और उसी के काल में चन्द्रगुप्त ने गुजरात तथा कठियावाड़ की विजय की।

Iy sas duray the regoney of "roabhavati gupta the the Gupta conruest of Gujrat and kathivwar was accomplished and the dawager queen offorded all passiple assistence to her illusrtraled father,

Vakatak Gupta Age

यह बात इस से भी सिद्ध होती है कि पूना ताम्रसेन में

(1) वाकाटम वंशवृक्ष के स्थान पर गुप्त वंश का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रभावती गुप्ता ने अपने पिता का नाम बड़ी श्रद्धा के साथा उल्लिखित किया है। यथा "पृथिव्यान प्रतिरथः सवराजोच्छता आदि।"

(2) दूसरे रूद्रदेवा द्रितीय अपने वंशनुगत शैव धर्म को धर्म को त्याग कर गुप्तो के वैश्य धर्म को स्वीकार कर लिया था।

(3) विवाह के पश्चात भी प्रभावती अपने पिता गोत्र को धारण करती थी आदि।

इन तथ्यो से ज्ञात होता है कि वाकाटक राज्य दूर्गवेन गुप्त नरेश के प्रभाव में आ गया था।

3. कदम्बवंश– कदम्ब वंश के शासक आधुलिक कर्नाटक (कुंतल) में शासन करते थे। वह दक्षिण सुप्रतिष्ठित वाहभंवा वंश था। चन्द्रगुप्त द्रितीय ने दक्षिण भारत के इस शाक्तिशाली वंश के साथ व्यवहारिक सम्बंध स्थापित करना सामयिक परिस्थितियों के आलोक में व्यवहारिक एवं औचित्य पूर्ण समझा होगा।

तालगुण्ड अभिलेख से पता चलता है कि– "काकुसी वर्मा नामक कदम्ब वंशी नरेश की राजकन्या गुप्त कुल में ब्याही थी।" अनुमान किया जाता है वकि चन्द्रगुप्त द्रितीय ने अपने पुत्र कुमार गुप्त का विवाह इस वंश में किया होगा। भेज के श्रृंगार प्रकाश तथा क्षेमेन्द्र कृत, औचित्य विचार चर्चा से पता चलता है कि इन दोनों के सम्बंध मधुर थे। श्रृंगार प्रकाश वे विदित है कि चन्द्र द्रितीय ने अपने सर्वश्रैष्ठ कवि कालिदास को दूत बनाकर कुंतल नरेश के यहां भेजा था। जिसने लौटकर अपने प्रतिवेदन में कहा था कि–

"इस समय कुतंल नरेश अपपने राज्य का भार आप के उपर सौंप दिया है और स्वंय वह स्मित हास्य के कारण मधुर क्रान्ति से युक्त दीर्घ कताक्षो वाली पियाओ के सराजान से सुगंधित मुखों का पान कर रहा है।"

इससे इस बात का अनुमान किया जाता है कि इसी वैवाहिक के माध्यम से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की ख्याति सुदूर दक्षिण तक फैली होगी। जैसा कि मेहरौली लौह स्तम्भ भी ज्ञात होता है कि "सम्राट चन्द्र के प्रताब के सौरभ से दक्षिणी समुंद्र भी सुवासित हो उठता है।"

"दिग्विजय"

वैवाहिक सम्बंधो द्वारा स्थिति को सुदृढ़ कर लेने के पश्चात चन्द्रगुप्त ने अपने पिता समुन्द्र गुप्त के सैनिक अभियाद धरणिवंध के उत्कृष्ट उदारण का अनुसरण करते हुए दिग्विजय का एक नतीन आदर्श प्रस्तुत किया, जिसे अदयगिरि के गुहालेख में–

"कृप्सन पृथ्वीजव" अर्थात "सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतना" कहा गया है। दुर्भाग्य वश समुनद्र गुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी दिग्विजय का उल्लेख चन्द्रगुप्त के किसी अभिलेख में नहीं मिलता है।

(1) शक विजय – चन्द्रगुप्त द्रितीय की विजय यात्रा का प्रथम शिकार पश्चिमोत्तर भारत की शक जाति हुई। जो कि एक दुरूह कार्य का जिसका सफल कार्यान्वयन उसका शाक्तिशानी पिता समुन्द्रगुप्त भी नहीं कर पाया था। यद्यपि इन विदेशी शक्तियों ने समुन्द्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर लिया था तथापि उसके दिवंगत होते ही, उपद्रवी सिद्ध होने लगे उसका कारण, उनका मूल विनाश नहीं करला था। जैसाकि रामगुप्त के समय में शको ने कितना भयंकर कर गुप्त साम्राज्य के समान खड़ा कर दिया था। अतः चन्द्र ने शको तथा अन्य विदेशी जातियों मूतोच्छोदन करना अपना पूनीत कर्तव्य समझा।

देवीचन्द्र गुपतभ, हर्षचरित्र, श्रृंगार प्रकाश एवं काव्यमीमांसा आदि ग्रंथो के अनुसार समुद्रगुप्त के निर्बल उत्तराधिकारी, रामगुपत के काल में शको ने अपने पूर्वकालीन कन्योपदायन के बदला बनने के निमित्र उसे असहाय अवसथा में डालकर धुवदेवी की मांग का प्रस्ताव किया। लेकिन उसका अनुज, चन्द्रगुप्त अपने अदम्य सहित व विलक्षण पौरूष का परिचय देकर हस्य भेष बनाकर शकराज की हत्या कर दिया जिससे गुप्त साम्राज्य का संकट कुछ समय के लिए टल गया। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उसने सर्वप्रथम हासना रूढ़ होने के बाद शको का ही मूल विनाश किया। जिसका साक्ष्य हमें अभिलेखें मुद्राओ साहित्य आदि से मिलता है।

(1) चन्द्रगुप्त द्रितीय के ती अभिलेख –

(क) उदयगिरी का **शैव गुहालेख** जो संहिविग्रहिक वीर सेन साब का है। **उदयगिरी का वैश्णव लेख** जो उसके सामत सलेकानीक महाराज का है तथा **सांची अभिलेख** से आम्र कार्दव सेनापति था।

"चन्द्रगुप्त पूर्वी मालवा में अपने सामन्तो एवं उच्च सैलिक अधिकारियों के साथ अभियान पर गया था।" इस अभियान का उद्देश्य निश्चय ही पूर्वी मालवा के ठीक पश्चिम में शकराज्य को जीतना था। क्योंकि– एक ही प्रदेश में सामन्त, सेनापति एवं युद्धमंत्री एवं सम्राट का होना यह संकेत देता है कि –इस युग आक्रमण की योजना काफी लम्बी चौड़ी थी, जिसका प्रयोग अवश्य ही शक विजय के लिए ही किया गया होगा।

(2) शक विजय के पश्चात चन्द्रगुप्त ने शक मुद्राओं के अनुकरण चर अपनी चांदी की मुद्राये चलायी। यहां शक नरेश रूद्रा सिंह तृतीय के कुछ चांदी के ऐसे सिक्के मिले है जो चन्द्र गुप्त द्रितीय द्वारा पुनर्राकृित कराये गये है। इन सिक्को के प्रमाण से भी शक राज्य पर उसका अधिपत्य सूचित होता है।

(3) चन्द्रगुप्त के व्याघशैली, सिंह विक्रम की उपाधि के सिक्के भी उसकी गुजरात एवं कठियावाडऋ की विजय के प्रमाण है।
डा0 R.C. मजूमदा का विचाह है कि– इन मुद्राओं से उसकी काठियावाड़ तथा गुजरात विजय का प्रर्याप्त संकेत मिलता है। क्योंकि वहां के जंगलों में सिंह बहुलता से प्राप्त थे।

निश्चय ही व्यार्थ प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन शक विजय के उपलक्ष में लिया गया होंगा।
(4) शकों की मुद्रओं का वजन 33 ग्रेन है और चन्द्रगुप्त द्रितीय की रजत मुद्राओं का भी वाजन 32 से 33 ग्रेन तक है।
(5) भारतीय जन अनुरतियां एक स्वर से चन्द्रगुप्त को– शकारि (शको का शुद्ध) के रूप में स्मरण करती है।
(6) सम्भवतः अपनी इसी विजय के बाद चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी।

तिथि– चन्द्र की शक विजय कब हुई निश्चित प्रमाण भावके कारण अभी भी एक पहेली बनी हुई है। शंको की अंतिम मुद्रायों पर 131 तिथि अंकित मिलती है। जिसकी इकाई की संख्या नष्ट होगयी है जिसे विद्वानों ने 0–9 के बीचमें माना है। इस प्रकार अंतिक शक शासक जिसे चन्द्रगुप्त ने राजित किया होगा, की तिथि 310 से 319 के बी मानी जा सकती है। यह सुतिदित है कि शक सम्वत का पर्वतन 78 AD में हुआ था। अतैव इस आधार पर कहा जा सकता है कि– "भारत में शकराज्य का उन्मुलन (310+78)=388 AD –व (319+78) =397 AD के बीच हुआ होगा।"– चन्द्रका समाकालीन शक नरेश रूद्रसिंह तृतीय था– जिसे हराकर मार डाला गया था।

शक विजय के परिणाम– चन्द्रगुप्त की शविजय से राजनैतिक, आर्धिक तथा सांस्कृतिक आदि लाभ हुए। जो निम्न है–
(क) अब उसके साम्राज्य की सीमा गुजरात कठियावड़ तथा पश्चिमी मालता तक विस्तृत हो गयी।
(खा) शक विपय के कारण उस नरेश को प्रसिद्ध भड़ोच का बंदरगाह प्राप्त हो गया। जिसे पेत्री पलस ऑफ ऐरेथिन्सी के लेखक ने वेरीगाजा कहा है।–

यह बंदरगाह इस काल का सर्वाधिक महत्व पूर्वा आर्थिक विनिमय का केन्द्र था। जिसे व्यापार में वृद्धि हुई। यहां से हांथी दात, वस्त्र, मिर्च मसाला, पत्थर, मलमल आदि महत्वपूर्ण वस्तुओ का आयात तथा निर्यात किया जाता था।

डा0 R.C. मजूमदार ने लिखा है कि– "पाश्चात्य विश्व के साथ भारतीय व्यापार के बढ़ जाने के कारण पश्चिमी सभ्यता एवं महारे देश की संस्कृति का निकट सम्पर्क स्थापित हुआ।"

स्मिथ का विचार है कि– "सौराष्ट्र और मालवा के साम्राज्य में मिल जाने से केवल असाधारण सम्पत्ति और उवज जाने प्रान्त ही नहीं प्राप्त हुए बल्कि पश्चिम तट के बंदरगाहों का रास्ता भी सर्वोच्च शक्ति के लिए बिना रोक–रोक के खुल गया।"

(2) वान्हीक विजय– मेहरौनी लौह स्वम्भ लेख से ज्ञात होता है कि"चन्द्र नामधारी राजा ने बाद्धहीक प्रदेश को जीता था। आज यह सिद्ध हो गया है कि यह चन्द्र नामधारी राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही था।"

यद्यपि बाद्धहीक शब्द से तात्पर्य निश्चय ही बल्ख (वैक्ट्रिया) से है तथापि यहां इसका तात्पर्य वल्ख से कदापि नहीं है।

डा0 यून एन राय का मत है कि– "इससे वास्ततिक तात्पर्य वाल्हीक जाति से है हजो कि उस समय भारत वर्ष में महत्वपूर्ण सत्ता के रूप में शासन कर रही थी। जैसाकि मेहरौली लेख में ही उत्तर कुषाणों को वाल्हीक की संज्ञा प्रदान की गयी है।"

डा0 भण्डारकर, D.C. सरकार एवं डा0 दशरथ शर्मा ने– महाभारत एवं रामायण को उद्धृत करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि – "पंजाब का वह भाग जो व्यास नदी के दोनों तटो के आस–पास स्थिति या वाण्हीक नाम से प्रसिद्ध था। भरत को बुलाने के लिए जो दूत कैकय द्वारा भेजे गये थे, वे वाण्ही प्रदेश से ही होकर गये थै।"

विद्वानों का मत है कि यह विजय चन्द्रगुप्त ने शक विजय के बाद की थी और इस विजय के समस्त में विष्णुपद पर उसने 'विष्णुध्वज' की स्थापना की थी।

(3) बंगविजय – डा0 परमेश्वरी काल गुप्त के अनुसार मेहरौली सवम्भ लेख से यह प्रगट होता है कि चन्द्रगुप्त द्रितीय ने पूर्व में बंग का भी दमन किया था।

कृष्णदत्त वाजपेयी– ने बंग को उत्तरी पश्चिमी भाग में बताया है।–

कालीदास की मान्यता है कि "बंग शब्द का अर्थ गंगा की दो शाखाओं भगीरथी और पदमा के बीच की भूमि है।" लगता है कि इस शत्रु दल के साथ 'तुमुल' युद्ध हुआ था। क्योंकि उस संदर्भ में महालेख स्तम्भ लेख में कहा गया है कि उस सम्राट ने बंगाल की लड़ाई में शत्रुओं की भूजाओं पर तलवार के द्वारा अपनी कीर्ति अंकित कर दी थी।

जिन शक्तियों को समुद्रगुप्त ने पराजित किया था लगता है कि वे रागुप्त के निर्बल शासन काल में सक्रिय हो उठी हो और एक संघ बना कर चन्द्रगुप्त द्रितीय की सेनाओं का सामना की हो। जैसाकि महालेख के अभिलेख से भी विदित होता है।

इस विजय से गुप्तों को ताम्रलिप्त का बंदरगाह प्राप्त हो गया। फलस्वरूप चीन और सुमात्रा से व्यापार इसी बंदरगाह से जहाज द्वारा गया था।

सम्भ्वतः यह विजय उसके राज्यकाल के अंतिम वर्ष में हुई होगी यही कारण है कि उसकी पुष्टि किसी भी अभिलेख तथा सिक्के से नहीं हो पाती।

(4) दक्षिणी विजय– मेहरौली लेख के अनुसार "चन्द्र के प्रताप से दक्षिण का समुंद्र तट आज भी सुवासित हो रहा है।" – के अनुसार पर कुछ विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि उसने दक्षिणी भारत में भी कोई सैनिक अभियान किया था। परन्तु यू यने राय का मत है कि "यह धारण भ्रामक है। हां इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि वेवाहिक सम्बंधों द्वारा चन्द्रगुतप का व्यापक प्रभाव इन दक्षिण के राज्यों पर रहा होगा।"

(5) काश्मीर विजय– डा0 P.L. Gupta- के अनुसार "काश्मीर तक उसके साम्राज्य का विस्तार कल्हण की राजतरंगिणी से ाात होता है। इसमें कहा गया है कि हिरण्य के लिधन के पश्चात विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को काश्मीर का उपरिक नियुक्त किया था।"

राज्य विस्तार– "मेहरौली लौह स्तम्भ लेख तथा ताम्र मुद्राओं से ज्ञात होता है कि–" चन्द्र के साम्राज्य की सीमा कमसे कम पंजाब तक अवश्य थी। फाहियान के विवरण से

स्पष्ट होता है। मध्यप्रदेश' उसके साम्राज्य में था। पूर्व में वह बंगाल तक विस्तृत था। दक्षिण पश्चिम में सिन्धु, डेल्टा, गुजरात और काठियावाड़ पर उसका अधिकार था। दक्षिण के वाकाअक एवं कदम्ब वंश उसके प्रभाव क्षेत्र में थे। उत्तर में उसका साम्राज्य काश्मीर तक विस्तृत था।

अश्वमेघयज्ञ– वाराणसी के दक्षिण पूर्व में स्थिति नंगवा नामक दो ग्राम से प्राप्त एक दाबान निर्मित अश्व चन्द्रगु अंकित है। श्री जे0 रत्नाकर ने– इसकी पहचान चन्द्रगुप्त से की है तथा अपना मत व्यक्त किया है कि चन्द्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, जिसके प्रतीक स्वरूप यह अश्व निर्मित किया गया था। लेकिन इस मत का समर्थन अन्य किसी भी साक्ष्य से नहीं होता।

शासन व्यवसथा– चन्द्रगुप्त द्रितीय न केवल एक विजता ही था, बल्कि वह एक योग्य एवं कुशल प्रशासक भी था। उसने ही सर्वप्रथम एस सुदृढ़ प्रशासन तंत्र की स्थापिना की थी। उसका दरबार वर्षो का दीर्घ काली शासन काल, शांति, सुव्यवस्था एवं समृद्धि का प्रतीक था। उसने अनेकानेक मत कुशल एवं योग्या मंत्रियों तथा सामंतो की सेवाये प्राप्त की।

फाहियान ने लिखा है कि मुझे अपने भारत भ्रमण के समय कभी भी असुरक्ष का सामना नहीं करना पड़ा। महाकति कालिदास ने भी शांति एवं व्यवसथा की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "जिस समय वह राजा शासन कर रहा था अपवनों में मद पीकर सोती हुई सुन्दरियों के वस्त्रों को वायु तक को स्पर्श करने का साहस नहीं होता था। तो फिर अपके आभूषणों तथा उनको छेड़ने का साहस कौन कर सकता था।"

दसके शासन काल के कुछ प्रमुख पदाधिकारी निम्न थे–

उपरिक – (राज्यपाल) कुमारामात्य (प्रशासनिक अधिकारी)
वत्नाधिकृत – सर्वौच्च सैलिक पदाधिकारी
रणभंडागारीधिकृत – सैनिक साज सम्मान का रख रखाव कर्ता
महादण्डनायक – न्यायधीश
भटाश्वपति – अश्वसैना का नायक
महाप्रतिहार – मुख्य दौवारिक (Chambenlain)
वियास्थितिस्थापक – कानून तथा व्यवस्था की स्थापना करता था।
दण्डपाशिक – यह पुलिस विभाग का प्रधान होता था।

फाहियान लिखता है कि– "प्रजा सुखे एवं समृद्धि थी तथा लोग परस्पर सौहार्द पूर्वक रहते थे। उन्हें न तो अपने मकानों की रजिस्ट्र करानी पड़ती थी और न ही न्यायानयों में न्यायाधीशों के सामने जाना पड़ता था। राजरू बिना दण्ड के शासन करता था। दण्ड विधान अत्यंत मृद्र था मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता था आदि।"

इस कथन से उसके शासन की शांति तथा समृद्धि की झलक मिलती है।

"सांस्कृतिक उपलब्धि"

चन्द्रगुप्त द्रितीय के शासन को न मात्र उसकी दिविजयों तथा कुशल प्रशासन के लिए ही याद किया जाता है बल्कि उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए भी उसका काल चिरस्मरणीय बना और यही तत्व थे जिनके कारण गुप्तकाल को प्राचीन भारत का 'क्लासिकल युग' अथवव स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है।

चन्द्रगुप्त स्वयं एक विद्वान एवं अनेक विद्वानों का आश्रम दाता था। उस समय पराकृति तथा उज्जयिलि विद्या के प्रमुख केनद्रह थे। अनुभुति के अनुसार उसके दरबार में 9 विद्वानो की एक मंडली निवास करती थी।

कालीदास, धन्वनतरी, अमरसिंह, वराहमिहिर, शंकु आदि प्रमुख कविता विद्वान थे।

चन्द्रगुप्त की विद्वद्धता व विधनुराग को देखते हुए कालीदास ने कहा थ कि–"स्वभाव से परस्पर विरोधी स्थानों में रहने वानी लक्ष्मी एवं सरस्वती ने इस नरेश में अपना निवास स्थान बना लिया था।"

"लिसर्ग भिन्नास्पद मेकसस्थर तस्मिनद्रय श्रीश्न्व सरस्वती चन्द्रशेखर की काव्यमीमांसा सें ज्ञात होता है।"

कि "उज्जयिलि में कवियों की परीक्ष लेने के लिए एव विद्वत्य परिषद थी। जो समय–समय पर कवियों की परीक्षा नेती थी सम्भव है कि यह इसी समय रही हो।"

धार्मिक नीति– चन्द्रगुपत द्रितीय धर्मनिष्ठ वैष्णव था जिसने परमभागवत की उपाधि धारण किया था। परन्तु वह अन्य धर्मान्यायियों के प्रति धर्म साहष्णु था। यही कारण है कि इसके काल में प्रायः सभी धर्मो का नैसार्गिक विकास हुआ। फाहियान उसको धर्म सहिष्णुता को पूरी–पूरी प्रशंसा किया है।

मथुरा स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि "इस समय मथुरा में शैवधर्म का विकास तीव्र गति से हो रहा था। वहां शैवधर्म के विभिन्न सम्प्रदाय विकसित हो रहे थे।"

उसका सहिविग्रहिक सचिव वीरसेन साव शैवधर्म के विभिन्न सम्प्रदाय विकसित हो रहे थे। उसका साहीविग्रहिक सचिव वीरसेन साव शैवया जिसमें भगवान शिव की पूजा के लिए उदयागिरी पहाड़ो पर एक गुफा का निर्माण करवाया था।

"भक्तया भगवतः शम्भो गुहा मेकम कारयत"

चन्द्रगुप्त का सेनापति बाम्रका देव बौद्ध था। सांची लेखानुसार उसने सांची महाविहार के आर्यसंघ को 25 दीनारे और ईश्वर नामक ग्राम दान में दिया था। यह प्रतिदिन पांच भिक्षुओं को भोजन एवं रत्नाग्रह में दीपक जलाने के लिए दिया गया था।– आदि

आर्थिक दशा– शक तथा बंग विजय के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त को भृगुकच्छ तथा ताम्रलिखित का बंदरगाह मीलखाने से व्यापार में अभूत पूर्व उन्नती हुई।

कालिदास के अनुसार– "उस समय हमारे देश के व्यापारी वाणिज्य समांघ में पूर्वी,ाप समूह में जाते थे।"

बसाढ़ की मुहरों से ज्ञात हाता है कि– "इस समय प्रसिद्ध नगरों में व्यापारियों एवं कारीगरों की समितियां वर्तमान थी। जिन्हें निगम कब जाता था। इस समितियों का गठन आर्थिक लाभ के लिए किया था। इसमें श्रेष्ठि निगम कुलिक लिगम, सार्थवाह निगम आदि निगमों का उल्लेख मिलता है।"

निगम समितियाँ आधुलिक बैंक का कार्य करती थी– कृषि तथा व्यवसाय पर भी ध्यान दिया गया– जिसका विस्तृत वर्णन अमरसिंह के अमरकोष में मिलता है।

मुद्राये– चन्द्रगुप्त ने जितनी मुद्राओं का प्रचलन किया सम्भवती किसी उत्तरवर्ती सम्राट से नहीं किया था। उसने स्वर्ण, रेजत तथा ताम्र तीन प्रकार की मुद्राओं का निर्माण करवाया था।

कुछ मुद्रायें निम्न प्रकार की थी– घर्नुघर मुद्रायें, सिंहनिहंता मंद्रायें, अश्वारूढ़ मुद्रायें, छत्रधारी मुद्रा, ध्वजधारी मुद्रा, चक्रविक्रम मुद्रा, पर्याक मुद्रा, चक्रमुद्रा, कलशमुद्रा आदि।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त एक महान विजेता, कुशल प्रशासक, कुरनीतिज्ञ, विद्वान, धर्मसहिष्णु एवं विद्या का उदार संरक्षक था। उसकी उपलब्धि किसी भी क्षेत्र में कम न थी। जिस साम्राज्य को उसके पिता तथा पितामाह ने लिर्भित किया था, वह चन्द्रगुप्त द्रितीय के काल में पूर्णतः संगठित तथा सुशासित होकर उन्नति के शिखर पर जा पहुंचा। जिसे 'क्लासिकल युग' या 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है।

निश्चय ही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य न मात्र गुप्तवंश का ही वरन् सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के महानतम् शासकों में से एकता था।

कालिदास ने रघुवंश में चन्द्रगुप्त द्रितीय के विषय में बड़ी ही अलंकारिक भाषा में लिखा है कि–

"भले ही पृथ्वी पर सहस्त्रों राजा हो लेकिन पृथ्वी इसी राजा से राजवती या(राजवाली) कही जाती है जिस प्रकार कि नक्षत्र तारा एवं ग्रहों के होने पर भी रात्री केवल चन्द्रमा से ही चाँदनी वाली कही जाती है।"

"कामत्रयाः संतु सहस्त्रशेडन्मु,
राजवंतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्र ताराग्रह संकुलापि।
ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रितः।"

–रघुवंश

2. कुमार गुप्त के शासन काल की प्रमुख घटनाओं व उसकी सफलता की विवेचना कीजिए।

बिलसद स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि "चन्द्रगुप्त द्रितीय के बाद गुप्त सिंहासन पर उसकी पत्नी ध्रुवदेवी से उत्पन्न उसका सबसे बड़ा पुत्र कुमार गुप्त सिंहासना रूढ़ हुआ।"

"महाराजा धिराज श्री चन्द्रगुप्तस्थ महादेव्यां धुवदेव्या मुत्पनस्थ महाराजाधिराज कुमार गुप्तस्थ।"

विलसद अभिलेख से ही उसके शासन काल प्रथम तिथि गुप्तसंवत 96=415AD तथा अंतिम तिथि उसके चांदी के सिक्कों से 453 AD से ज्ञात होता है।

यद्यपि उसने आने इस 40 वर्षीय दीर्घी एवं शासन काल में कोई दिग्विजय नहीं किया तथापि उसके शासन काल का महत्व इस बात में निहित है कि उसने अपने पिता तथा पितामह के साम्राज्य को अक्षुण्य बनाये रख। उसमें उसमें किसी प्रकार की तबदीली नहीं आने दी तथा अपने विशाल साम्राज्य में शांति एवं व्यवस्था स्थापित करने में सफल रहा। उसके सुव्यवस्थित शासन का वर्णन मंदसौर अभिलेख में बड़े ही काव्यात्मक ढंग से किया गया है।

"कुमार गुप्त एक ऐसी प्रथ्वी पर शासन कर रहे थें, जो चारों तरफ समुद्रों से घिरी हुइ थी, सुमेरू तथा कैलाश पर्वत जिसके बृहत पयोघर के समान थे तथा सुरम्य वाटिकाओं मे खिले हुए प्रसून (फूल) जिसकी हंसी के समान थे।"

"चतुस्समुद्रान्त बिलोल मेख्लां सुमेरू कैलाश बृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्त रूफुटपुष्पहासिलि कुमार मुप्ते पृथ्वी प्रशासति।।"

बैशानी राजमुद्र तथा मंदसोर अभिलेख से चन्द्रगुप्त द्रितीय के एक अन्य गोविंद गुप्त नामधारी पुत्र का पता चलता है। सर्वप्रथम डा0 R.G. भंडारकर ने अपनी मत प्रति पादित किया कि– "चन्द्रगुप्त द्रितीय ककी मृत्यु के पश्चात उसके दो पुत्रों गोविन्द गुप्त तथा कुमार में सम्भवतः सिंहासन के लिए युद्ध हुआ था।–"

श्री जगन्नाथ ने कहा है कि– "वैशानी राजमुद्रा पर पर गोविंदगुप्त की माता के रूप में घ्रुवरवामिनी का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि"–"गोविन्द गुप्त ही चन्द्रगुप्त द्रितीय का बड़ा पुत्र और यूवराज था। अपने पिता की मृत्यु पर वहीं सिंहासनारूढ़ हुआ। लेकिन 415 AD में मृत्यु या पराजय के कारण कुमार गुप्त प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ।"

आपने तर्क दिया है कि "चन्द्र द्रितीय की अंतिम तिथि 412 तथा कुमार गुप्त की प्रारम्भिक तिथि 415 थी। यह तीव वर्ष का अंतराल इसकी पुष्टि करता है।"

उपरोक्त सभी कथन तर्क संगत नहीं मानुम होते। कुमार गुप्त हो सकता है कि 419 AD के पहले ही सिंहासनारूढ़ हुआ हो। दूसरे यह उत्तराधिकार किसी भी अन्य साक्ष्य से नहीं सिद्ध होता है। गोविन्द गुप्त की न तो कोई मुद्रा ही मिली है और न ही कोई राकीय आभिलेख।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वह नल तो कभी सिंहासनारूढ़ हुआ था और न कोई युद्ध ही हुआ था। हां इतना निश्चितपूर्वक कहा जा सकता है कि वह अपने पिता की अधीनता में वैशाली का गवर्नर था। जिसकी पुष्टि वैशानी राज्यमुद्रा से हाती है।

डा0 दिनेश चन्द्र सरकार तथा R.C. मजूमदार भी गोविन्द गुप्त को मालवा का गवर्नर मानते है। कुछ समय पश्चात R.G. भंडारू में उपने पूर्व मत को परित्याग कर यह सिद्ध करने की चेष्टा किया कि दोनों एक ही व्यक्ति थे। लेकिन इस मान्यता का भी कोई ठोस आधर नहीं मिलता।

कुमारगुप्त कालीन शासन की घटनाओं का विस्तृत वर्णन हमें उसके शासन काल के समय के प्राप्त असंख्य अभिलेखों तथा मुद्राओं से होता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि गुप्तकालीन अभिलेख सबसे ज्यादा कुमारगुप्त के शासन काल के ही प्राप्त हुअ है। जिनमें प्रमुख निम्न है– विलसद का शिलालेख, गढ़वा शिलालेख, मंदसौर अभिलेख, कमरदंडा अभिलेख, मानकुअंर अभिलेख, तुमैन अभिलेख, बंगाल से प्राप्त अभिलेख–

(1) दामोदर ताम्रपत्र (2) वैग्रम ताम्रपत्र (3) घनदैह ताम्रपत्र

अभिलेखों के अतिरिक्त पश्चिमी भारत के विशान भू–भाग से कुमारगुप्त की स्वर्ण रजत तथा ताम्र की असंख्य मुद्रायें प्राप्त हुई है। यथा, अश्वमेघ प्रकार, व्याघ्रनिहेत प्रकार, अश्वारोही प्रकार, घर्नुघरी प्रकार, गजारोही प्रकार आदि। अभिलेखों में– उसके अनेको नाम तथा उपलब्धियों का संकेत मिलता है। यथा वन्रीमहेन्द्र, अश्वमेघमहेन्द्र, रीमहेन्दइा सिंह, सिंहमहेन्द्र, महेन्द्रकुमार, महेन्द्रादित्य आदि।

विषय– यद्यपि कुमार के शासन काल के असंख्यों अभिलेख मिले है। तथापि उनसे उसकी किसी भी विजय अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसका प्रारम्भिक शासन बड़ा ही शांति और सुखमय था। विलसद अभिलेख के अनुसार–"उस नरेश के साम्राज्य में अभिवर्द्रमान जिय राज्य संवत्सरे"

इसके अलावा उसके अभिलेखों से यह ज्ञात हेता है कि "यह नरेश अपने राज्य काल के प्रारम्भिक वर्षो में अपने साम्राज्य के साधनों का प्रयोग सैनिक कार्यो में न कर धार्मिक कार्यो पर कर रहा था।"

दक्षिण अभियान– कुछ विद्वानों का विचार है कि कुमार गुप्त ने अपने पितामाह समुन्द्रगुप्त की शांति दक्षिण भारत वर्ष पर कोई सैनिक अभियान किया था। उसके कुछ सिक्कों के उपर "व्याघ्रवलपराक्रम अर्थात व्याघ्र के समान बल
एवं पराक्रम वाला" की उपाधी अंकित मिलती है।
डा0 रायचौधरी ने इस आधार पर यह मत प्रतिपादित किया है कि–"कुमारगुप्त अपने पितामाह के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्वदा नदीं को पार कर व्याघ्र वाने जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया। महाराष्ट्र के सतारा जिले से उसकी 1395 मुद्रायें तथा एलिचपुर (वर्रार)से 13 मुदायें मिली है।"

किन्तु मात्र व्याघ्रबल पराक्रम तथा सिक्कों के आधार पर ही उसके दक्षिनी अभियान का निष्कार्ष नहीं लिकाला जा सकता है। सिक्कों का कारण कुछ और भी हो सकता है।

डा0 राघाकुमुद मुकर्जी– ने इसी प्रकार खगानिहंता प्रकार के सिक्कों के आधार पर जिसमें गुप्त को गैंडा मारते हुए दिखाया गया है। उसकी आसाम विजय का निष्कर्ष निकाला है। क्योंकि गैंडा आसाम में बहुतायत से पाये जाते थे।

अपितु दोनों मत कनपना प्रधान है। इनके स्वीकार करने का कोई तार्किक आधार नहीं मिलता है।

———————————————————

वाकाटकों के साथ सम्बंध–

कुछ इतिहासकारों यथा यू0 पनराय का मत है कि "मंदसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि– मालवा पर कुमारगुप्त शासन कर रहा था। लगता है कि उसके शासन के अंतिम वर्षो में उत्पन्न अशांति का लाभ उठाकर वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन ने मावा पर अधिकार कर लिया था। स्कनदगुप्त ने सम्भवत– पुष्यामित्रों को हरा कराने के बाद मावा से वाकाटको को भगाया होगा। इस तरह ज्ञात होता है। उसके शासन काल के अंतिम वर्षो में गुप्त तथा वाकाटक सम्बंध पूर्व जैसे नहीं थे।"

"पुश्यामित्र जाति का आक्रमण"

स्कनदगुप्त के भितरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके शासन काल के अंतिम वर्षो में पष्यभूति जाति ने आक्रमण कर दिया। इस समय कुमारगुप्त काफी वृद्ध हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में शासन का सम्पूर्ण दायित्व स्कन्दगुप्त के कंधो र आ पड़ा था। भितरी अभिलेख में इस आक्रमण का बड़ ही काव्यात्मक व रोचक ढंग से वर्णन किया गया है।

"पुष्यामित्रों की सैलिक शक्ति और सम्पत्ति बहुत अधिक थी। इस आक्रमण से गुप्तवंश की राज लक्ष्मी विचलित हो उठी तथा स्कन्दगुपत को पूरी रात पृथ्वी पर जाग कर बितानी पड़ी। उसने पुष्यामित्रों को जीता, जो बल और कोष से समृद्ध थे और उनके राजारूपी पद पीठ पर अपना बायां पैर रखा।"

"विचलित कुल लक्ष्मी स्तम्भनायोद्यये त।
क्षितिलल शयनीये, येन नीता त्रियामा।।
समुदित बव कोषान पुष्यमितांश्च जिटवा।
क्षितिप चरढा पीढ़े स्थापितों वाम पादः।।"

भितरी स्तम्भ लेख – स्कन्दगुप्त

विद्वानों में पुष्यामित्र जाति को लेकर बड़ा ही विवाद उत्पन्न हुआ है। दिवाकर महोदस ने 'पुष्यामितांश्च' के स्थान पर पुद्धभित्रांश्च पाठ पढ़ा है तथा यह प्रतिपादित यिा है कि'–"यह किसी जाति का आक्रमण न होकर साधारण शत्रुओं से संघ का आक्रमण था।" दिवाकर के इस मत से A.L. वाशम तथा छावड़ा भी सहमत है।
डा0 राजालदास बनर्जी– पुष्यामित्रों को हुण मानते ही विभिन्न स्त्रोतों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में पुष्यामित्र नामक जाति थी। वायुपुराण तथा जैनकल्वसत्र के अनुसार– "पुष्यामित्र जाति नर्वदा नदी के तट पर मेकल प्रदेश में रहती थी।"

कुछ भी इतना तो निश्चित है कि आक्रमणकर्ता चाहे पुष्यामित्र जाति के रहे हों या साधारण शत्रुओं का संघ बुरी तरह से पराजित किया गये। परन्तु इस सूचना के मिलने के पहले ही सम्राट दिवंगत हो चुका था।
डा0 फ्लीट ने 'मानकुअंर अभिलेख' में कुमारगुप्त की उपाधि केवल महाराजश्री है के आधार पर अपना मत व्यक्त किया है कि–"कुमार गुप्त अपने शत्रुओं के अधीन हो गया था।" इनका यह मत नितांत असंगत है। क्योंकि दामोदर दानपत्र में– जो मलकुअर के बाद का है। कुमारगुप्त की अपाधि 'महाराजाधिराज' की मिलती है।

अश्वमेघयज्ञ– एक स्वर्ण मुद्रा मिली जिसके अग्रीाग पर 'अश्व' और 'यूप' अंकित है। पृष्ठभाग पर चमर धारिणी सजमाहिषी तथा "श्री अश्वमेघ महेन्द्र" अंकित है।
'महेन्द्र' कुमारगुप्त की सर्वाधिक प्रिय उपाधि थी। इसी के आधार पर डा0 रायचौधरी तथा रमाशंकार त्रिपाठी ने इसे कुमार गुप्त की मुद्रा माना है। इस मुद्रा से निष्कर्ष निकलता है। कि उसने अश्व मेघ किया था लेकिन इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि असको इस यज्ञ कों किस महत्वपूर्ण उपलब्धि के बाद किया था।

धार्मिक नीति– कुमार गुप्त भी अपने पूर्वजों की भांति वैष्णव धर्मानुयायी था, लेकिन उसकी धार्मिक नीति सहिष्णुता से ओत–प्रोत थी। गढ़वा के लेख में इसे परमभावत कहा गया है।–
"परमभागवत महाराजाधिराजे श्री कुमार गुप्त राज्ये।"
इसके बावजूद भी उसने अपने राज्य में बुद्ध, शिव, सूर्य आदि देवताओं की उपासना में किसी प्रकार की विघटन नहीं आने दिया। जिसके लिए उसके अभिलेख साक्षी है।
(1) मलकुंवर अभिलेख– के अनुसार बुद्धमित्र नामक एक व्यक्ति ने वुद्ध की प्रतिमा स्थापित किया था।
(2) करमदंडा अभिलेख– के अनुसार– "उसका राज्पाल या मंत्री पृथ्वीषेण, शैव था और उसने एक शिवलिंग की स्थापना किया था।"
(3) मंदसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि 7 पश्चिमी मालवा में उसके राज्यपाल वंधुवर्मा ने सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया था।–

(4) कुमार गुपत के काल में नालंदा बौद्ध महाविहार की स्थापना की गयी थी। ह्वेसांग उसकी पुष्टि करता है।

कुमार गुप्त की एक अन्य महत्व पूर्ण उपलब्धि यह थी कि उसने महत्वपूर्ण तथा कूटनी तिक्ष तथा शासन कार्य में दक्ष व्यक्तियों की सेवा प्राप्त किया था। इसके कालमें प्रांत को 'भुक्ति' कहते थे। उसके कुछ प्रांतीय शासकों के नाम निम्ल है।

चिरादत्त – पुण्ड्रवर्धन का राज्यपाल (उत्तरी बंगाल)
घरोत्कच – एरण (पूवी कालवा का शासक)
वंधुवर्मा – पश्चिमी मालता का शासन।
पृथ्वीषेण – यह सचिव, कुमारामात्य तथा महाराजधिकृत

आदि महत्वपूर्ण पदों को सुशोंभित कर चुका था। प्रान्तीय शासकों को "उारिक महाराज" कहा जाता था।

निष्कर्ष– इस प्रकार उपयुर्क्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कुमारगुप्त प्रथम का शासन काल शांति और सुव्यवस्था का काल था। इस समय गुप्त साम्राज्य उपने उत्कर्ष की पराक्रमता पर था। यद्यपि उसने कोई विजय नहीं कि तथापि गुप्तों की सैन्य शक्ति को क्षीण नहीं होने दिया। यह उस बात से सिद्ध होता है कि उसके शासन काल के अंतिम वर्षो में गुप्त सेना ने पुष्यामित्रों को पुरी तरह परास्त किया था, जबकि पुत्थगित सैन्य शक्ति से काफी मजबूत थे।

उसके स्वर्ण सिक्कों पर इसे– 'गुप्तकुलामलचंद्र– तथा गुप्तकुल सयोम शशी कहा गया है। जो सर्वथा सार्थक प्रतीत होती है।

3. स्कन्दगुप्त गुप्तवंश का अंतिम महान शासक था।

अथवा

स्कन्दगुप्त के राज्यकाल की मुख्य घटनाओं का विवेचन कीजिए? व गुप्तवंश में उसका स्थान निर्धारित कीजिए?

कुमारगुप्त की मृत्यू के बाद उसका अद्विवीय वीरवर, बाहुबल के लिए प्रख्यात तथा अपने कुल का गौरवमयी पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। इसे अपने नाम को चरितार्थ करने वाला सम्राट कहा गया है। वास्तव में यदि समुन्द्रगुप्त सर्वराजोच्छेता एवं चन्द्रगुप्त विक्रमदित्य शकारि या ता स्कन्दगुप्त को हुण विजेता होने का गौरव प्राप्त था।

जूनागढ़ अभिलेख में उसके शासन की प्रथम तिथि पुप्त संवत 136=455 AD उत्कीर्ण मिलती है। अतः उसने अपने 12 वर्षीय अल्प शासन में श्लाघनीय उपलब्धियों को प्राप्त किया। उसकी सर्वाधिक फ्रि उपाधि 'क्रमादित्य' की थी। उसकी घर्नुघारी मुद्राओं पर परहितकारी राजा जपति दिवं श्री क्रमादित्य' गरूदऋ प्रकार की रजत मुद्राओं पर "परमभगवत महाराजाधिराज री स्कन्दगुप्तस्थ क्रमादित्य" अंकित मिलता है। उसके शासन की जानकारी महें उसके अभिलेखों तथा सिक्कों से मिलती है। पूनागढ़ अभिलेख भितरी स्तम्भ लेख गढ़वाअभिलेख, कहौमआभिलेख, विहार स्तम्भलेख आदि मुख्य है।

"विजय"– उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है। कि स्कन्दगुप्त के शासन काल का आरम्भिक वर्ष बड़ा ही अशांत पूर्ण था। भितरी स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद ही 'गुप्त वंश की लक्ष्मी चंचल हो उठी–
"वितरि दिवमुखेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी" और उसने अपने बाहुबल से पुनः स्थापित किया। इस क्रिया में उसे सारी रात युद्ध भूमि में बितानी पड़ी। "क्षितितल शनीये येन नीता त्रियाभा।" लगता है कि ये आक्रमणकारी वही पुष्यामित्र जाति के थे जिन्होंने कुमारगुप्त के शासन के अंतिमवर्ष में गुप्तवंश पर आक्रमण किया था। वृद्ध होने के कारण क्षुद्र का सारा उत्तरदायित्व स्कन्दगुप्त के कंधों पर आ पड़ा था।

भितरी अभिलेख में ही कहा गया है कि पुष्यामित्रों को जीत कर स्कन्दगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ था।
"समुदित बल को थान पुष्यमित्रांश्च जित्वा,
क्षितिज चरण पीढ़े स्थापितों वामवाद।"
इसी अभिलेख में आगे कहा गया है कि युद्ध विजय का समाचार सुनने के पूर्व ही कुमारगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी। इससे निश्चित पूर्वक कहा जा सकता है कि उसका अंतिम काल अवश्य अशांति पूर्ण रहा होगा।

यदि R.C. मजूमदार पर विश्वास किया जाय तो मानना पड़ेगा कि स्कन्दगुप्त को अपने अंग्रेज पुरूपुरत नामधारी से उत्तराधिकारी युद्ध भी करना पड़ा था।

(1) हूण आक्रमण– हूण मध्य एशिया में निवास करने वाली एक बर्बर जाति थी जो अपनी जनसंख्या वृद्धि के कारण नये प्रदेशों की तलाश में निकलकर दो शाखाओं में विभक्त हो गयी।

पश्चिमी शाखा– यह शाखा आगे बढ़ती हुई रोम पहुची, जिनकी ध्वंशात्मक कृतियासे रोमल साम्राज्य को गहरा आघात पहुंचा–
पूर्वीशाखा– यह शाखा धीर–धीरे आगे बढ़ती हुई आम्सस नदी घाटी में बस गयी। इसी शाखा ने भारत पर गुप्त साम्राज्य के पतन तक अनेक आक्रमण किये।

पूनागढ़ अभिलेख, विशाखदत्तकृत, मुद्राराक्षस तथा पुराणें में हूणो को 'म्लेच्छ' कहा गया है।
महाभारत, रघुवंश, हर्षचरित, शोमदेव कृत, नीतिवाम्याकृत लकित विस्तर तअफसढ़ के लेख में भी हुणे का उल्लेख मिलता है।

भारत हुणों का प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त के समय में हुआ। यू0 यन राय के अनुसार– "इसका नेता खुशनवाज़ ने ईरान के साहसनी शासको के दबाव के बाद भारत पर आक्रमण किया होगा। इस युद्ध की भंयकरता का वर्णन भितरीस्तम्भ लेख में मिलता है। जिसके अनुसार– "हुणों के साथ युद्ध खेत्र में उतरने पर उसकी भूजाओं के प्रताप से पृथ्वी कांप उठी तााि भीषण आवर्त (भवंडर) खड़ा हुआ।
हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोभ्यां घरा कम्पिता। भमावर्त्त करस्य.....।"
दूर्भाग्यवश इस युद्ध का और विस्तृत विवरण नहीं मिलता है, पर इतना निश्चित है कि हुणों को स्कन्दगुप्त ने पराजित कर खदेड़ दिया।

(1) इसका प्रमाण हमें जूनागढ़ अभिलेख से भी मिलता है जिसमें हुणों को म्लेच्छ कहा गया है।
इसके अनुसार"पराजित होने के बाद वे अपने 'म्लेच्छ' देश में स्कन्दगुप्त की कीर्ति का गुनगान करने लगे।
"अविच जितमेव तेन प्रथयंति यथांसि यव्य रिपवोडपि,
आमूलभग्न दर्वा निर्वचना क्लेच्छदेशेवु।।"
(2) चन्द्रगोमिन ने भी अपने व्याकरण में एक सूत्र लिखा है जर्टो (गुप्तों) ने हुणों को जीता। विद्वान ने इस सुत्र का तात्पर्य स्कन्दगुप्त की हुण विजय से लगाया है।
(3) सोमदेव के कथासरित्सागर में भी उल्लेख मिलता है। कि "उज्जयिनी नरेश महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने हुणों को परास्त किया था। यहां स्कन्दगुप्त की ओर संकेत किया गया है। जो कुमार गुप्त महेन्द्रादित्य का पुत्र था। म्लेच्छो से तात्पर्य हुणों से है।

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कि स्कन्दगुप्त का हुणों के साथ युद्ध किस स्थान पर हुआ था। भितरी स्तम्भ लेख में जिस स्थान पर हुणयुद्ध का वर्णन हैं उसके ठीक बाद 'श्रोतेषु गांङ्र ध्वनि' अर्थात दोनो कानों में गंगा ध्वलि सुनाई पड़ती है का उल्लेख मिलता है। इस आधार पर डा0 B.P. सिन्हा के अनुसार– 'यह युद्ध गंगा नदी की इायी में लड़ा गया था। इनके अनुसार स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाईयों का लाभ उठातें हुए हुण गंगा नदी के किनारे तक जा पहुंचे थे।
जगन्नाथ तथा D.C. सरकार ने– गाङ्रध्वलि के स्थान पर साङ्रध्वलि का पाठ बताया है। यह शब्द धनुष के टंकार का सूचक है युद्ध स्थन का नहीं।
R.P. "त्रिपाठी ने राजतंरगिणी का उदाहरण देकर– इस शब्द सु युद्ध की भंयकरता का अर्थ लगाया है।"

वास्तव में यह भंयकर स्थिति को इंगित करने वाला अलंकारिक शब्द प्रयोग है। दूसरे गंगा से तात्पर्य आकाश गंङ्रा से है। नाकि पृथ्वी को गंगा से। इस शब्द के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि यह युद्ध गंगा घाटी में हुआ था तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है।

अत्रेयी विश्वास के अनुसार यह मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। कि "यह युद्ध साम्राज्य की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर हुआ होगा।"
उपेन्द्रठाकुर का विचार है कि हुणयुद्ध या तो सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत में लड़ा गया था। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि– "स्कन्दगुप्त इस प्रदेश की रक्ष के लिए सर्वाधिक चिंतित था और काफी शोच विचार के बाद इसकी रक्षा का भार पूर्णदत्त को सौंपा था।
इस अभिलेख में आगे कहा गया है कि– "जिस प्रकार देवता वरून को पश्चिमी दिशा का रक्षक स्वामी नियुक्त कर निश्चित हो गये थे उसी प्रकार वह पूर्णदत्त को पश्चिमी दिश का रक्षक नियुक्त कर के आश्वस्थ हो गया था।"

विभिन्न मत मतान्तरों को देखते हुए पश्चिमी भारत के किसी भाग को ही युद्ध स्थल मानना अधिक तर्क संगत होगा। स्कन्दगुप्त ने हुणों को 460 AD के पूर्व ही

कभी पराजित किया होगा, क्योंकि उस तिथि कि कहौम आमलेख से पता चलता है कि उसके राज्या में शांति थी। वास्तव में यह विजय उसकी श्लाघनीय उपलब्धि थी।

अल्तेकर पान्डेय का मत GS कि "साध्न सम्पन्न होते हुए भी गुप्तो ने किसी द्रढ़ पश्चिमोत्तर नीति का पालन नहीं किया था। हिन्दुकुश तो दूर उन्होने सिंधु नदी तक के प्रदेश पर भी सदैव दृढ़ अधिपत्य नहीं स्थापित किया था। अधिक से अधिक पंजाब की विदेशी जातियों के साथ उन्होंने मित्रता पूर्ण व्यवहार रखा। परिणामतः पश्चिमोत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण दर्रे, खैवर, वोलन आरक्षित रहें और यही से आकर हुणों ने मालवा तथा मध्यप्रदेश पर आक्रमण किये।

"Most Important "

नागो से युद्ध– जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है। कि "स्कन्दगुप्त की गरूण्ध्वांकित राजाज्ञा नागरूपी उन राजाओं का भर्दन करने वाली थी जो मान और दर्व से अपने फन उठायें रहते थे।

"नरपति भुजंगानां मानदर्पोल्फणानाम।
प्रतिकृति गरूणाज्ञां निर्विषी चावकर्त्ता।।

इस आधार पर डा0 पटनीट ने अनुमान लगाया है कि स्कन्दगुप्त ने नागवंशी राजाओं को पराजित किया था। लेकिन यह मत अन्य साक्ष्याभवर्ग निर्वाघ रूप से स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

वाकाटको से युद्ध– ऐसा प्रतीत होता है कि स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाईयों का लााि उठाकर वाकाटकों ने भी उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। वालाधर अभिलेख में वाकाटक नरेश7 परेन्द्रसेन को मालवा का शासक बताया गया है। कोशल और मेकल सभी।

"कोशन मेकन मात्राधिपति अश्वमिंत शासन जबकि मंदसौर से ज्ञात होता है कि मालवा गुप्तो के अधीन था और कुमार गुप्त का वंधुवर्मन यहा का गवर्नर था।
डा0 अल्तेकर का विचार है कि स्कन्दगुप्त के समय में मालवा के शासन ने अपनी स्वत सत्ता घोषित कर दी थी, जिसमें वाकाटकों ने उसकी मद्द की थी।

जो भी हो स्कन्दगुप्त ने शीघ्र ही उस प्रदश पर अपना अधिपत्य पुनः कायम कर लिया और वाकाटक उसे कोई क्षति नहीं पहुचा सके। उनके मध्य किसी युद्ध का वर्णन नहीं मिलता है।

इस प्रकार वह हुणों को पराजित कर अपने पिता तथा पितामाह के साम्राज्य को पूर्णतयः अक्षुण्य बनाये रखा। उसके साम्राज्य की सीमा "उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्वदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र तक के विस्तृत भू–भाग तक विस्तृत थी। जूनागढ़ अभिलेख में उसके साम्राज्य सीमा की विशालता को देखते हुए कहा गया है कि "चतुरूदधिजलान्तां स्कीत पर्यन्त देशराम।"

शासन प्रबंध– स्कन्दगुप्त एक योद्धा के साथ–साथ कुशल प्रशासक भी था। उसका विशाल साम्राज्य प्रांतों में विभक्त था। प्रांत को देश अवनि अथवा 'विजय' कहा जाता

था। राज्यपाल को गोप्ता कहा जाता था। प्रमुख नगरों का शासन चलाने के लिए नगर प्रमुख नियुक्त किये जाते थै।

स्कन्दगुपत का शासन बड़ा उदार था। जूनागढ़अभिलेखन से ज्ञात होता है कि "जिस समय वह शासन कर रहा था, उस समय उसकी प्रजा में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो धर्मच्यूत हो अथवा दुखी दरिद्र आपत्तिग्रस्त लोभी या दण्डनीय होने के कारण अत्यंत सताया गया हो।

तस्मित्रृपे, शासति नैव कश्चिन्द्र।
धर्माद पेतो मनुजः प्रजासु।।
आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्य्यो।
दण्डयौ न वा यो भृश पीड़ितः स्थातू ।।"

इसके समय में अधिकारियों की नियुक्ति के विषय में योग्यता को पर्याप्त महत्व दिया जाता था। उसके कुछ स्थानीय कर्मचारियों के नाम निम्नलिखित मिलते है।

अग्रहारिक, शौल्किक, गौल्मिक

धार्मिक नीति– अपने पूर्वजों की भांति स्कन्दगुप्त भी एक धर्मानिष्ठ पैश्वण था। उसकी गरूप प्रकार की रजत मुद्राओं पर परमभागवत की उपाधि मिलती है।

"परमीागवत महाराजाधिराज स्कन्दगुप्तस्य क्रमादित्यः भितरीस्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि उसने भीतरी में भगवान

शाक (विष्णु) की प्रतिमा स्थापित करवायी थी।"
"कर्त्तव्या प्रतिमा का काचिल्प्रतिमां तस्य शाङ्रिणः।"

गिसार में भी चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तट पर विष्णु की मूर्ति स्थापित करवायी थी।

इसके बावजूद भी स्कन्दगुप्त धार्मिक मामलों में पूर्ण रूपेण उदार एवं सहिष्णु था। उसने अपने राज्य में अन्या धर्मो को विकसित होने का पूर्ण अवसर प्रदान किया।

स्कन्दगुप्त के समय में सूर्यपूजा प्रचलित थी जिसका उल्लेख इन्दौर अभिलेख में मिलता है और यह लेख भी सूर्यपूजा से शुरू होता है।

कहौम अभिलेख से पता चलता है कि–"मद्रनामक एक व्यक्ति ने पांच जैन तीर्थकरों की पाषान प्रतिमाओं का निर्माण करवाया था।

सार्वजनिक कार्य– स्कन्दगुपत एक अति लोकोपकारी शासक था। जिसे अपनी प्रजा के सुख–दुख की चिंता बनी रहती थी। भीतरी स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि–वह दीन व्यक्तीयों पर दया करता था।

"आर्तेषु कृत्वा दयाम्"

जूनागढ़ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि–स्कन्दगुपत के काल में भारी वर्षा के कारण जूनागढ़ का ऐतिहासिक वांघ टूट गया था। क्षण भर के लिए वह रमणीक्षील सम्पूर्ण लोक के लिए दुर्दशन यानी भयावह आकृति वाली बन गयी। इससे प्रजा को

महान कष्ट हुआ। इस कष्ट के निर्वारणार्थ पुर्णदत्त का पुत्र चकपालित ने दो माह के भीतर अतुल धन व्यय कर, बिना प्रजा पर कोई कर लगाये। पुनः निर्मित करवा दिया।

"अय क्रर्मेणाम्बुद काल आगते निदघकालं प्रतिदायै तोयदैः।
ववर्ष तोयं बहुसततं, चिरं सुर्दशन येन विीोद चालरात।।"

"मूल्यांकन"

स्कन्द गुप्त एक महान विजेता राष्ट्रोद्वारक गुप्तवंश की प्रतिष्ठा का संरक्षक कुशल प्रशासक धर्मसहिष्णु तथा प्रजा वात्सल्य सम्राट था।

अभिलेखों में उसे–अपने बश का सिर मौर (स्ववंश केतु) गुप्तवंश का महत्वपूर्णवीर– गुप्त वंशो के वीर राजाओं के गुण का सन्निधान– त्रपतिगुणनिकेतः दिरि कहा गया है। जाएके सम्राट के लिए सर्वधा उपयुक्त ही प्रतीत होती है। आयुमंजुरीमूलकल्वमें में उसे श्रैष्ठ बुद्धिमान तथा धर्मवत्सल कहा गया है। उसका नाम 'स्कन्द' कार्तिकेय से सम्बंधित था। उसकी रजत मुद्राओं पर 'मयुर' का चित्र मिलती है जो कार्तिकेय का वाहन है। इस देवता का विशेष गुण सेनापतित्व है और यही स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है।

अपनी वीरत तथा पराक्रम के वल पर ही उसने अपने वंश की विचलित राज लक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठित किया था। कुमारगुप्त के पुत्रों में वह सर्वाधिक योग्य एवं बुद्धिमान था। जूनागढ़ अभिलेख में वर्णन मिलता है कि–

"सभी राजकूमार को छोड़कर लक्ष्मी ने स्वंय उसका वर्णन किया था।
व्यपेत्य सर्वान मनुजेन्द्र पुत्रान लक्ष्मी स्वंय ये बरचांचकार।"

यदि स्कन्दगुप्त जैसा पराक्रमी व्यक्ति राजा न हुआ होता तो हुणों द्वारा गुप्त साम्राज्य पूर्णतः छिन्नभिन्न कर दिया जाता। जैसा कि उसकी मृत्यु के बाद हुआ। उसने हुणों के आक्रमण को रोककर लगभग आधी शती तक इस देश की महान सेवा किया और अपने इसी वीर कृत्य के कारण देश रक्षक के रूप में जाना गया।

R.C. मजूमदार ने लिखा है कि–

"This tiroic achievement that saved his Kingdom from the scorge of the acrual barbaric inrasion of hane"

यदि चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों की दासता से देश को मुक्त किया तथा चन्द्रगुप्त द्रितीय ने विदेशी शासकों का मूलोच्छेद किया तो स्कन्दगुप्त ने अहंकारी हुणों के गर्व को चूर्ण कर दिया।

उसकी प्रजा उससे इतना उपकृत थी कि–"उसकी अमल कीर्ति का मान बालक से लेकर प्रौढ़ तक प्रसन्नता पूर्वक सभी दिशाओं में किया करते थे।"

"चरितयमल कीर्तेः गीयते यस्य शुभ्र दिशिदिशी
परितुष्टैरा कुमारैः मनुष्यें।" —भि0 स्तम्भ लेख

इस प्रकार स्कन्द गुप्त एक महान विजेता मुक्तिदाता अपने वंश की प्रतिष्ठा का पुर्नस्थापक तथा अंतोगत्वा एक धर्व सहिष्णु तथा प्रजा वात्सल सम्राट था।

वस्तुतः वह गुप्त वंश के महान शासकों की श्रंखला में अंतिम कड़ी था। उसके बाद गुप्त सिंहासन पर अनेक अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी सिंहासनारूढ़ हुए। जो वाह्य आक्रमणों तथा अंतरिम कठिनाईयों के कारण गुप्त साम्राज्य के विघटन एवं विभाजन को रोक नहीं पाये। इसी कारण स्कन्द गुप्त को गुप्त वंश का अंतिम महान शासक कहा जाता है।

(1) समुन्द्रगुप्त का मूल्यांकन व व्यक्तित्व निरूपण कीजिए?

प्रयाग प्रशस्ति के गूढ़ अध्ययन से ज्ञात होता है कि सर्वराजोच्छेता, कविराज, धर्म प्राचीर, भारतीय नेयी लियन, गुप्त सम्राट समुन्द्रगुप्त विक्रमांक एक असाधारण योद्धा, कुशल सेनापति, कुशन प्रशासक, अद्वितीय व्यक्तिगत गुणों वाला, विभिन्न असाधारण यौग्यताओं से परिपूर्ण, विद्वान कवि गायक दानी, उदारशील, धर्मसहिष्णु तथा प्रजा वात्सल सम्राट था। "को नु स्वादनऽस्य न सयाद गुणमति विछुदां ध्यान वात्रय एकः अर्थात ऐसी कौन सा गुण था जो समुन्द्रगुप्त में नही था अर्थात उसमें सभी गुण विद्धमान थे।"

निःसंदेह समुन्द्रगुप्त का समय राज्य विस्तार शासन साहित्य, कला धर्म आदि सभी दृष्टियों से प्रगति का था। उसने भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का सूत्र पात किया। उसके समय में जो बहुमुखी प्रगति हुई उसके कारण ही बाद में गुप्त काल प्राचीन भारतीय इतिहास के पन्नें में स्वर्णकाल कहलाने का दावेदार बन गया। निःसंदेह उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्रितीय का इसमें बहुत बड़ा योगदान था, परन्तु इन सभी कार्यो का आरम्भ समुन्द्र गुप्त के समय में ही हो चुका था। इसी परिप्रेक्ष्य में डा0 R.C. मजूमदार ने "The Classical Age" में लिख है कि– उपलब्ध साधनों के आधार पर हम जो भी निर्णय समुन्द्रगुप्त के बारे में ले सकते हों वह यह है कि– समुन्द्र गुप्त आने वाले युग की उस भौतिक और बौद्धिक शाक्ति का सजीव प्रतीक था। जिसक निर्माण बहुत कुछ स्वंय उसने ही किया था।

"Samundra Gupta asforas we can judge of him from the materials at ous disposal w\sas teh s\visible embodiment of the Physical and Intellectual \Vigour of caming age which was largly his own creation. प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात हेाता है कि– समुन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व में शांति व युद्ध दोनों पक्ष मौजूद थे। डा0 वासुदेव उपाध्याय का मत उचित ही प्रतीत होता है कि– "समुन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व में उदयनकी कला प्रियता, चन्द्रगुप्त मौर्य की साहसिकता एवं प्रवीरता सम्राट अशोक की उदारता दयालुता व धर्म सहिष्णुता तथा हुर्ष की विधान प्रियता व दानशीलता आदि के गुण विधमान थे।"

समुन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का निरूपण निम्न संदर्भ के अन्तगर्त किया जा सकता था।

(1) विजेता – प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने मुख्यतः तीन सैनिक अभियान किये। आर्यवर्त का प्रथम अभियान, दक्षिणापथ का अभियान किये। आर्यावर्त का द्रितीय अभियान। प्रयाग प्रशास्ति की 18वीं 14वीं पक्ति से ज्ञात होता है कि उसने आर्यवर्त के प्रथाम अभियान ने अच्युत नागसेन व कातकुलज को हराया। पुनः प्रयाग प्रशस्ति का 19वी 20वी पंक्ति से पता चलता है कि उसने अपने दक्षिणी पख आभयान में 12 राजाओं को पराजित कर उन्हें अपनी स्वाधीनता स्वीकार करा कर स्वतन्त्र कर दिया। ये निम्न लिखित थे। कोशन का महेन्द्र, महाकान्टार का व्याघ्र राज्य को, कोयल का मंबराज, बिवरपुर की राजा महेन्द्रगिरी, कोट्टर का राजा स्वामीदत्त, एण्डपल्ल का राजा दमन कान्ची का राजा स्वामीदत्त, एण्डपल्ल का राजा दमन कान्ची का राजा विष्णुगोच, अवमुक्त का राजा नीलूराज, बेंगी का राजा हस्तिनमी, पालम्क का राजा उग्रसेन, देवराष्ट्र का राजा कुवेर, कुस्थलपुर का राजा धनन्जय।

पुनः प्रयाग प्रशस्ति की 21 वीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि उसने उत्तरा पथ के द्रितीय अभियान में वराजाओं–रूद्रदेव, अतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत नंदि वलवर्मा, को हराकर उनके राज्य को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार जहां उसने दक्षिना पथ क `राजाओं के साथ ग्रहणमोक्ष्नानुग्रह की नीति अपनाई, वही आर्याव्रत के राजाओं के साथ प्रसंभद्धरण की नीति को अपनाया। यह उसकी दूरदर्शिता व कूटनीतिज्ञता का ज्वलंत प्रमाण है क्योंकि वह जानता था कि सूदूर दक्षिण के राजाओं पर नियत्रण बद्ध शासन बनाये रखना असम्भव तो नहीं कठिन अवश्य था। इसके अलावा उसने आटविक राज्यों (21वीं पंक्ति) व पांच सीमावर्ती राज्यों– समतट, द्रवाक, कामरूप, कर्त्तृपुर तथा नेपाल को अधीन किया। प्रयाग प्रशस्ति की 22वीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि– उसने नौ सीमावर्ती गणराज्यों, (जो साम्राज्य की पश्चिमी तथा द0 पंजाब सीमा पर स्थित थे।) अधीन किया। ये निम्न थे– मालव अर्जुनाथन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जून, सनमानिक, काल, खरपरिक।

प्रयाग प्रशस्ति की 22वीं से 29वीं पंक्ति में कुछ विदेशी शक्तियों के नाम दिये गये है। जिनके विषय में यह बताया गया है। कि– "वे स्वंय को सम्राट की सेवा में उपस्थिति करना, कन्याओं उपहार एवं अपने–अपने राज्यों में शासन करने के निमित्त गरूण मुद्रा से अंकित राजाज्ञा के लिए प्रार्थना करता आदि विविध उपायो द्वारा सम्राट की सम्राट की सेवा किया करती थी।" ये निम्न थी। दैवपुत्र शाहि बाहानुषाहि, शक, मुरूण्उ, सिंहल आदि

इस प्रकार समुन्द्रगुपत निःसंदेह एक महान विजेता था। उसे कभी भी अपने सैनिक अभियान में पराजय का मुंह नहीं देखना पड़ा प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात है कि

"समसत पृथ्वी को जीत लेने के बाद उसकी कीर्ति भूमंडल में विचरण करती हुई इन्द्र लेक में पहुंच गयी।"

इसी प्रकार उसके अश्व मेघ सिक्कों पर अंकित लेख "वह सम्राट भूमंडल की विजय करके स्वर्ग लौक की विजय करता है।" से भी उसके श्रैष्ठ विजिमीषु सम्राट होने का संकेत मिलता है।

(2) प्रवीरता अथवा वीरता– प्रयाग प्रशस्ति से कुछ ऐसे संदर्भ मिलते है। जो उसकी उत्कृष्ट सैनिक पवीत्रता व वीरता के परिचायक है। जैसे– "यस्य विविध समर शतावरण दक्षस्प स्वभुज बल पराक्रमिक बंधौ पराक्रमाकस्य" अर्थात "वह विभिन्न प्रकार के सैकड़ों युद्धों में भाग देने में दक्ष था, दोनों भुजाओं के बल से अर्जित पराक्रम जिसका एक मात्र बंधु था। प्रताप ही जिसका प्रतीकथा, परशु बाण, भाला, शंकु के धावों से जिसका शरीर शोभयमान था।" इसके सिक्के भी उसकी पवीत्रता के स्पष्ट परिचायक है। समुन्द्रगुप्त के कम से कम 6 प्रकार के सिक्के भिन्न–भिन्न भांतियों में प्राप्त हुए है। उसके Standard type के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर पराक्रम तथा मुल्य भागपर "समरशत वितत विजयो जितरि पराजितो दिव जयति।" अंकित है।

व्याघ्र प्रकार के सिक्कों पर 'व्याघ्र पराक्रम' अंकित है। एक अन्य प्रकार के सिक्कों में– कृतांत पर शुर्जपत्य जितराजजेता जितःस्वंय अजित और जहने कभी न जीते गये राजाओं का विजेता जय करता है।

इसी तरह प्रयाग प्रशास्ति से भी ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने अकेले ही अपने बाहुबल से क्षणमात्र में अच्युत, नागसेन तथा गणपतिनाग को युद्ध में जड़ से उखाड़ फेंका।"

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरण समुन्द्रगुप्त की वीरता प्रवीरता व सैनिक योग्यता के उत्कृष्ट परिचायक है।

(3) समुद्रगुपत की विद्धता एवं द्यिा प्रेम– समुद्रगुप्त युद्ध क्षेत्र में जितना स्फूर्तिवान था, शांति खेत्र में उससे कहीं अधिक कर्मण था। वह स्वंय उच्च काटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। इसी लिए स्मिथ ने लिखा था– " Samundra Gupta was a man of except and Personal capacity and unusally varied gift. He stands forsh as a real man a scholar, poet musiciam and warrior"

प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार– "विद्वानों की जीविका की स्त्रोत अनेक काव्यों की रचना द्वारा जिसने कविराज की उपाधि प्राप्त की थी। विदुज्जनोप जीव्यानेि काव्य क्रिया भिः प्रतिष्ठित कवि राज शब्द हो।" विद्धाता के क्षेत्र में उसकी तुलना प्रयाग प्रशस्ति में देवताओं के गुरू वृहस्पति से की गयी है। गान्धर्व विद्या में प्रवीणता के कारण उसने देवताओं के स्वामी (इन्द्र) के आचार्य मुम्बरू नारद आदि को लज्जित कर दिया था।

ब्रीडित त्रिदश पति गुरों तुम्बरूनारद आदि। प्रयाग प्रशस्ति उसे वीब्रा वादन का भी शौक था– जो कि सिक्कों पर वीणा बजाते हुए दिखाया गया है।
प्रयाग प्रशस्ति में उसके विधानुराग के विजय में प्रचुर उल्लेख मिलता है। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार उसका मन विद्वानों के सत्संग सुख का व्यवसनी था। वह शास्त्र के गूढ़ अर्थ का सविज्ञ था। बौद्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि उसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुवंध का अपना मंत्री बनाया था। कविहरिषेण उसका संधिविग्रहिक सचित था ही उससे ज्ञात होता है कि वह विद्वानों तथा कवियों का अत्यधिक आदर करता था।

(4) दानशीलता व उदारता– प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त महान दानी, उदार व परोपकारी था। इसी कारण डा0 वासुदेव जी ने उसकी समानता अशोक की उदारता व हर्श की दानशीलता व विद्याप्रियता से की है। उसकी दानशीलता के बारे में प्रयाग प्रशस्ति में कहा गया है कि–"वह विद्वानों को पुरस्कृत करने वाला तथा गावों तथा सुवर्ण मुद्राओं का दान करने वाला कहा गया है।"
पुनः एक अन्य स्थल से ज्ञात होता है कि– "उसने अपने दानशीलता के बल पर, श्रेष्ठ काव्य (सरस्वती) तथा लक्ष्मी के शाश्वत विरोध को समाप्त कर दिया था।"

'सत्काव्य श्री विरोघान्वुघ गुणित गुणाज्ञा हटाने व कृता।' –ऐसा प्रतीत होता है कि उसने विद्वानों को (प्रयाग प्रशस्ति) इतना धन दिया कि वे धन हो गये– ऐसा विचार था कि जिसके पास विद्या का ज्ञान होता है उसके पास लक्ष्मी नहीं होती होती है। यही लक्ष्मी व सरस्वती का शाश्वत विरोध है।
प्रयाग प्रशस्ति से उसकी दानशीलता का भी उल्लेख मिलता है। "अनेक भ्रष्ट उत्सल (विछिन्त) राजवंशें को उसने पुनः प?तिष्ठित किया। उसके राज कर्मचारी अनेक नृचतियों के विवभव को वायस देने में नित्य कृत रहते थे।

गुप्तवंशीय अभिलेखों में इसे करोड़ो गांवो और मुद्राओं का प्रदाता कहा गया है।

अनेक गो हिरण्य–कोर्टिप्रदस्प, प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि– वह अपनी उदारता दानशीलता तथा अदभुत चरित्र के कारण चिर काल तक स्मरणीय रहा। "सुचरिस्तोतब्याने कादभुतोदार चरितस्य" – प्रयाग प्रशस्ति

(5) धर्मनिष्ठा– प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त एक धर्मनिष्ठ तथा धर्म सहिष्णु सम्राट था। प्रयाग प्रशस्ति में उसे धर्म प्राचीर वंहाः कहा गया है। यद्यपि ब्राह्मण धर्म की श्रैष्ठता इसके समय में स्थापित हो गयी थी तथा वैष्णव धर्म का उत्साही अनुयायी होने के बावजूद भी वह अन्य धर्मो के प्रति समान रूप से उदार तथा सहिष्णु था। उसके काल में शैव, बौद्ध तथा कुछ सीमा तक जैन धर्म का समान रूप से विकास हुआ।

उसने श्रीलंका के बौद्ध शासन मेघवर्ण को वोधिगया में बौद्ध विहार बनाने की अनुमति दी थी और बौद्ध आचार्य वसु वंधु को अपना मंत्री नियुक्त किया था तथा प्रयाग प्रशस्ति का रचियता हिरिवेष स्वंय शैव मत का अनुयायी था।

(6) प्रशासनिक क्षमता– समुन्द्र गुप्त न मात्र विजेता ही था अपितु एक कुशल प्रजाजति कर्त्ता भी था। उसकी विजयों के फलस्वरूप साम्राज्य उत्तर पूर्व में बंगाल की खाढ़ी से लेकर पश्चिम में पूवीर्र मालवा तक विस्तृत था। काश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिधु गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत इसमें सम्मिलित था।
"प्रयाग प्रशस्ति के शब्दो में उसने अपने बाहुबल के द्वारा समस्त भूमंडल को बांध दिया।"

–"बाहुवीर्य प्रसरण ध्रणिवन्धस्य"

समुन्द्र गुप्त ने अत्मंत निपुणता के साथ शासन का संचालन किया। केन्दीय शासन उसके प्रत्यक्ष नियंत्रण में था– उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम निम्न थे– संधिविग्रहिक, खाद्यपरिक, कुमारामात्य(1A-5) महादण्डनायक आदि। प्रयाग प्रशस्ति में उल्लखित सुक्ति तथा विजय शब्दों से ज्ञात होता है। उसने अपने साम्राज्य का विभाजन प्रांतो तथा जिलो मं किया था।

प्रयाग प्रशास्ति में इसके शासन को प्रचण्ड शासन कह के सम्बोधित किया है।
साध्द्व साधूदय प्रलय हेतु पुरूषय।
साद्रव साधूदय प्रलय हेतु पुरूषया चितंस्स।

अर्थात– "जो अचिंन्त्य पुरूष की भांति –साधु के उदय और असाधु अर्थात दुष्टो के प्रलय का कारण था।"

इस प्रकार प्रयाग प्रशस्ति की यह उक्ति कि– कोनु साद्योऽस्य न स्याद गुणमति– अर्थात विश्व में कौन सा ऐसा गुण है। जो उसमें नहीं है। निःसंदेह उसके व्यक्तित्व के सभी पक्षों को उजागर करती है। प्रयाग प्रशस्ति में ही कहा गया है। कि– "वह केवल लोक नियमों अनुष्ठानों के पालन करने हेतु मानरूप था अपितु पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता था।"

लोक समय क्रियाक्षु विधान भात मानुषस्य लोकधाम्नों देवस्य। एरण लेख में उसकी तुलना वृध, रधु आदि से की गयी है। अतः R.C. मजूमदार का यह कथन सर्वथा अचित प्रतीत होता है कि– "समुन्द्रगुप्त के सिक्कों तथा अभिलेखों के अध्ययन से हमारे समक्ष ऐक ऐसे बज्रदेह शक्तिशानी सम्राट की मूर्ति आ खड़ी होती है। जिसके

शारीरिक ओज के अनुरूप वैदिक और सांसकृतिक सम्ययता ने उस नव युग का सुत्रपात किया। जिसमें आर्यवर्त ने नवीन रानीतिक चेतना और राष्ट्रीय अकात्मकता पांच सदियों के रानीतिक विघटन और परकीय अधिपत्य के बाद पुनः अपलब्ध की और नैतिक, भौद्विक, सास्कृतिक और भौतिक समृद्धि की वह उच्चता अधिगत की जिने इसे भारत का स्वर्ण युग बना दिया। ऐसा स्वर्ण युग जिसकी ओर अब्रलित भावी पीढ़िया, मार्ग दर्शन और प्रेरणा के लिए सदा देखने वाली थी।"

" The Classical Age' By R.C. Majamdar
Well Know histrorian of Modern era"
————————————————————

समुन्द्रगुप्त और नेपोलियन

सर्वप्रथम B.A. स्मिथ ने अपने ग्रंथ Earlyhistory of India में लिखा था कि समुन्द्र गुप्त भारतीय नेपोलियन था। ऐसा लगता है कि स्मिथ की यह समानता दोनों के सैनिक अभियानों व उपलब्धियों पर आधारित थी। स्मिथ ने दोनों में विभिन्न प्रकार की समानता बतलायी।

(1) साम्राज्य का गठन समान था– इनका मत है कि समुन्द्रगुप्त एवं नेपोलियन के साम्राज्य का गठना एक जैसा था–

(अ) नेपोलियन ने विजय प्राप्त के पश्चात इच बेलिज्म, जर्मनी, इटली तथा इलीरियन आदि को उसने अपने साम्राज्य के हृदय भाग के रूप (As a heart of land)में वर्णित किया था। इसी तरह समुन्द्रगुप्त ने आर्यावर्त के राज्यों को अपने साम्राज्य का मुख्य भाग बनाया था।

(ब) जिस तरह नेपोलियन ने सरक्षित राज्य– स्पेन, राईनसंध, वासी की उची तथा नपुन्स आदि थे।

उसी तरह– समुन्द्रगुप्त के द्वारा विजित आरविक राज्य, दक्षिण पथ, सीमावर्ती राज्य आदि उसके प्रभाव व अधीन थें।

(स) मित्रराज्य Allystate – प्रर्शिया, रूस आदि देश नेपोलियन के मित्रराज्य थे। इसी तरह समुन्द्रगुप्त के मित्र व संरक्षित राज्य– दैवपुत्र षाहि षाहा नुषाहि, मुरून्ड, शक तथा सिंहल आदि थे।

(2) लक्ष्य में समानता

नेपोलियन ने सम्पमूर्ण यूरोप को विजित कर फ्रांस के नतृत्व में एक संघ बनाया था। इसी वरह समुन्द्रगुप्त ने भी एक चयवर्ती राजा के रूप में ज्ञात है। अतः उसने भारत के रानीतिक विघटन को समाप्त कर एक शक्तिशानी केन्द्र पाटलिपुख की रचना की थी।

यद्यपि यह समानता मात्र कल्पना पर आधारित कही जा सकती है। जो लक्ष्य नेपोलियन का थ अर्थात सम्पूर्ण यूरोप व कुछ एशियाा को जीत कर, विश्वराज्यवी स्थापना करना। वह समुन्द्रगुप्त का नहीं था। समुन्द्र की विजये मात्र विजयों की भावना पर आधारित थी न कि सम्पूर्ण भारत व उसके सीमवर्ती राज्यों को जीतकर एवं शक्तिशाली साम्राज्य बनाने का था। यदि ऐसा होता तो समुन्द्र– काश्मीर पश्चिमी पंजाब, राजपूताना, सिन्धु गुजरात आदि को भी जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया होता, लेकिन ये राज्य सदा उसके राज्य से बाहर रहे।

(3) दोनों विजेता'– स्मिथ ने सुझाया है कि दोनों विश्व के महानतम विजेताओं में से थे। लेकिन जहां तक समय व सैलिक उपलब्धियों का प्रश्न है दोनों सर्वथा एक दूसरे से भिन्न थे नेपोलियन की विपयों से समुन्द्रगुप्त की कोई संगमता ही नहीं की जा सकती है।

आलोचना–

कृष्णास्वामी आइंगर– और अधिकांश भारतीय विद्वानों ने स्मिथ की इन समानताओं का जमकर खंडन की है जो तर्क संगत भी लगती है।

1. दोनों दो समयों या कालों में पैदा हुए थे। एक चौथी सदी में तो दूसरा 18वीं से 19वीं सदी में।
2. समुन्द्रगुप्त एक जन्म जात राजकूमार था जबकि नेपोलियन की सारी उपलब्धियां उसके मस्तिष्क व साहस व बल की उपज थी। निःसंदेह इस मामले में नेपोलियन – समुन्द्रगुप्त से कई गुना महान था। क्योंकि उसे विरासन में कुछ भी नहीं मिला था।
3. नेपोलियन के विजय अभियानों से सारा यूरोप त्रस्त था जबकि समुन्द्रगुप्त के अभियान से पूरा भरतीय उप महाद्वीप भी त्रस्त नहीं था।
4. समुन्द्रगुप्त ने अपनी कूटनीति व दूरदार्शिता के कारण दक्षिणा पथ के राज्यों को अपनी अधीनता स्वीकार करा के स्वतन्त्र कर दिया था – जबकि नेपोलियन की विवशता के कारण कुछ भाग उसके साम्राज्य से अलग हुए थे।
5. नेपोलियन के स्टोन नासूर बन गया था – जबकि समुन्द्रगुप्त के लिए कोई भी क्षेत्रया भाग इतना घातक नहीं था।
6. समुन्द्रगुप्त अपने विजय अभियान में कभी पराजित नहीं हुआ, न कभी असफल ही रह। जबकि नेपोलियन अपने रूसी वस्पेन की अभियान में असफल भी हुआ और ड्राफलगर, वाटरक व नील नदी के युद्ध में नेपोलियन को बुरी तरह से पराजित होना पड़ा।
7. In the comprisoit of Neopolian- cuttural achivement of samundra Gupta was Nothing Because after being defected in the battle of Neel river Napolian- excaveted a new culture and civilization of mishra - Next. In france he affected and reformed all the economic cultural and politiyeal structre and started an number of plans and programe in order to improve the stander of people of france and wellfore. scon
8. नेपोलियन अपने अंतिम दिनों को एक बंदी की तरह बिताया और बंदी के रूप में ही उसकी मृत्यू हुई। लेकिन समुन्द्रगुप्त एक राजकुमार के रूप में जन्मा और एक राजकुमार के रूप में मरे।

Neopolian spent his last day as a confined cutprit and died as a confined norms, but somundra Gupta born as prince and died as a king last and huge empire. Samundra Gupta left emence empre and property for hiis heirs- but Nepolian had nothing in has last days to handover to his heirs.

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों समानतायें कम और असमानताए ज्यादा थी। यदि थोड़ा विस्तार और उपर उठकर सोचाजाय तो दोनों में कुछ भी समानता नहीं थी। मात्र विपयों के आधार पर किसी के मध्य समानता नहीं स्थापित की जा सकती। दूसरे दोनों के सैनिक अभियानों में भी पर्याप्त अंतर था।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दोनों की उपलब्धियां अपने समय के अनुसार अवश्य उपयुक्त थी और यदि एक समय की उपलब्धि को दूसरे समय की उपलब्धि से तुलना की जाए तो कोई भी मेल नहीं होता – खासकर समुन्द्रगुप्त और नेपोलियन के परिप्रक्षण में तो और भी नहीं।

″ Sanudra Gupta the second Gupta monarch. who was one of the most remarkable and accomplished king of Indian History″

B.A Smithn - in Early history of India

————————————————————

गुप्त काल

1. सामाजिक व्यवस्था– परम्परागत चार वर्ष – ब्राह्मण सर्वोच्च स्थान
प्रमुख कर्त्तव्य – मध्ययनः अध्यापन यज्ञ कराना और यज्ञ करना दान लेना और दान लेना।
चारो वर्णो का विभाजन– गुण और कर्म के आधार पर न होकर जन्म पर आधारित था। कौटिल्य के अर्थशासत्र कीत रह– वृत्त संहिता में भी चारों वर्णो के लिए विभिन्न बस्तियों की व्यवस्था की है। न्याय व्यवस्था में भी वर्णभेद पूर्णतः बने रहे। दण्ड व्यवस्था भी वर्ण पर आधारित थी।
आपदधर्म ब्राह्मण– राजा व योद्धा वाकाटक व कदम्ब वंश। कृषि व व्यवसाय की।
ब्राह्मणों को भूमि अनुदान की प्रथा मृच्छकरिक के अनुसार– ब्राह्मण चारूदत्त वाणिज्य व्यापार करता था।

2. क्षत्रिय– मनु के अनुसार कर्त्तव्य– प्रजा की रक्षा करना– दान करना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना आदि।
मनु की दृष्टि में दस वर्षीय ब्राह्मण 100 वर्षीय क्षत्रिय से श्रैष्ठ था।
आवद् धर्म– की व्यवस्था पशुपालन से।
वैश्य– कृषि व व्यवसाय। गुप्तयुग में उन्हें वणिक, श्रेष्ठी व सातवाहक भी कहा गया है।
डा0 एस0 के0 शर्मा के अनुसार– "गुप्त युग में वैश्यों का कार्य अर्थ सम्बंधी नीतियों का संचालन करना माना जाता था। वस्तु उनकी स्थिति समाज में शुद्रों जैसी हो गयी थी। इसका प्रधान कारण इनका अध्ययन और यज्ञ करने से वित्त हो जाना था।"

वैश्य वर्ग अपनी दानशीलता के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध था। ये मंदिरों, मढ़ो तथा आवघालयों को दिन खोलकर दान करते थै।
आपदधर्म की व्यवस्था–
शुद्र– मनु के अनुसार ईश्वर की ओर से शुद्र का एक मात्र धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य की सेवा करना था।
तथापि याज्ञवल्म्य ने उदार दृष्टि कोण अपनाया और शुद्रों को व्यापारी कृषक और कारीगर होने की अनुमति दे दी।

वैश्य जब कृषि से विमुख होने लगे और व्यापार तथा वाणिज्य में रूचि लेने लगे तब शुद्रों ने कृषि को अपना लिया।

गुप्तकाल में शिल्प कर्म शुद्रों के सामान्य कर्त्तवयों में आ गया। वायुपुराण के अनुसार उसके दो प्रमुख कर्त्तव्य थे। शिल्प और भृन्ति– शुद्र केवल अपने वर्ण के लिए साक्षी हो सकते है। यह लियम पुनः दोहराया गया।

धर्म सम्बंधी अधिकारो के क्षेत्र में भी शुद्र के प्रति उदार भावनायें व्यक्त की गयी।

मतस्य पुरान के अनुसार– यदि शुद्र भक्ति में निमल रहे मदिरापान न करे इन्द्रियों को वश में रखे तो उसे भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

निःसंदेह इस समय शुद्रों को रामायण महाभारत तथा पुराण भ्रमण का अधिकार प्राप्त हो गया था।

परम्परागत चारों वर्णो के अतिरिक्त गुप्तकालीन स्मृतियों में कुछ मिश्रित जातियों के उल्लेख भी मिलते है। जैसे–मूद्धविषिक्त करन अम्बष्ठ पारशव तथा उग्र। इस काल के शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि उपजातीयों में अत्यधिक गतिशीलता थी।

गुप्तकालीन अभिलेखों में कायस्थ जाति का भी उल्लेख मिलता है।

सर्वप्रथम याज्ञवत्सय स्मृति में–

अश्ववृश्यता– गुप्तकालीन साहित्य में अश्वृश्यों को अपवित्र, असत्यवादी, चोर, झगडालू क्रोधी व लोभी कहा गया है। यदि किसी दिव्य की दृष्टि किसी अश्वृश्व पर पड़ जाती थी तो वह अपवित्र हो जाता था। उसे अपनी शुद्धि के लिये धार्मिक अनुष्ठाना करना पड़ता था। ये सबसे निम्न वृत्तिका वासन करतें थे। पाया शिकार मछली पकड़ना तथा श्मशान छापे की रखवाली करना आदि।

फाहियान ध्वेन सांग ने भी अश्वृश्यों का वर्णन किया है।

दासप्रथा– प्रचलित थी नाद ने 15 प्रकार के दास बताये है। जिनमें मुख्य निम्न है।

प्राप्त किया हुआ

स्वामी द्वारा प्रदत्त

ऋण न चुका सकने के कारण

ढांव पर हार जाने वाला आदि।

गुप्तकाल में दासों की अवस्था पूर्वकाल से अधिक दयनीय थी। क्योंकि नारद तथा वृहापति दोनों ने कहा है कि दास केवल अपवित्र कार्यो में ही लगाये जाते थे। कृषि कार्य में नहीं

स्त्रियों की दशा– यद्यपि गुप्तकालीन सहित्य व कला में नारी का आदर्शमय चित्रण है। परन्तु व्यवहारिक रूप में उनकी स्थिति पहले की अपेक्षा दयनीय हो गयी थी स्त्रियों की समाजिक मर्यादा को लेकर इस काल में कुछ ऐसी बाते विकसित हुई। जो बाद की

शताब्दियों में उसकी विशेष्ता बन गयी। जैसे– बालविवाह, पर्दा प्रथा तथा सती प्रथा। जिससे सर्व शिक्षा पर प्रभाव पड़ा। स्त्री को चहार दिवारी में रहने को बाध्य किया गया।

धार्मिक आर्थिक और वेयक्तियक सभी स्थितियों में स्त्रियों पर प्रतिबंध लगाया था। उन्हें ऐसी सम्पत्ति कहा गया– जो दान में तथा गिरवी रखी जा सकती थी।

प्रदाप्रथा– अधिक विकसित नहीं थी। अभिज्ञान शकुन्ती ले से ज्ञात होता है कि जब शकुन्तला, राजादुष्यर्त के दरबार में गयी, तो अपने मुख की अवगुढ़न के ढ़क लिया था।

सतीप्रथा– भनुगुपत का अभिलेख – इसमें गोपरान नामक सेनापति की पत्नी के सती होने का वर्णन है।

यद्यपि सतीप्रथा का अत्यधिक प्रचलन नहीं था तथापि विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी।

बृहषपति के अनुसार– "पति के मरने के बाद जो पतिव्रता, साध्वी निष्ठा का पालन करती है वह सब पापों को छोड़कर पतिलोक को प्राप्त करती है। नित व्रत उपवास में लिप्त– ब्रह्मचर्य में व्यवस्थित दम दान में रत सती अपुत्रवती होते हुए भी स्वर्ग की और प्रस्थान करती है।"–

इन्हे श्वेत वस्त्र धारण कर जीतन भर ब्रह्मचर्य रहना पड़ता था।

गणिकाये नागरिक जीवन का सुधार अंग थी। देवदासी प्रथा प्रचलित थी।

याज्ञवस्मय ने सुझाया है कि– पुत्र के अभाव में पुरूष की सम्पत्ति पर उसका पत्नी का सर्वप्रथम अधिकार होगा। इसके बाद उसकी कन्याओं का।

इसके विपरीत भी स्मृति कारों ने मत दिया है।

———————————————————